जैनधर्म की कहानियाँ

भाग-१४

राजा श्री कंठ अपने पूर्वभव के भाई को नंदीश्वर द्वीप की वंदना करने जाता हुआ देखकर स्वयं भी अति उत्साह से वंदना करने हेतु अपने परिवार एवं इष्टमित्रों के साथ चल पड़ते हैं। परन्तु मानषोत्तर पर्वत के उस पार ना जा पाने के कारण बोध को प्राप्त हो वन में जाकर मुनिदीक्षा अंगीकार कर लेते हैं।

प्रकाशक

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन, सोनगढ़

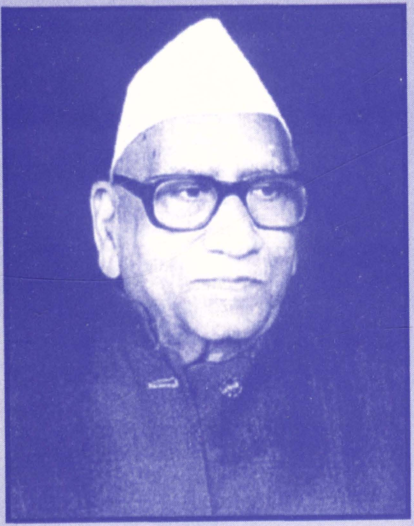

श्री खेमराज गिड़िया

जन्म : 27 दिसम्बर, 1918

देहविलय : 4 अप्रेल, 2003

श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया

जन्म : 1922

देहविलय : 24 नवम्बर, 2012

आप दोनों के विशेष सहयोग से सन् १९८८ में **श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया** ग्रन्थमाला की स्थापना हुई, जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य एवं पौराणिक कथाएँ प्रकाशित करने की योजना का शुभारम्भ हुआ। इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

जन्म : सन् १९१८ चांदरख (जोधपुर)

पिता : श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

शिक्षा/व्यवसाय : प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र १२ वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।

सत्-समागम : सन् १९५० मेंपूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा : सन् १९५३ में मात्र ३४ वर्ष की आयु में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में अल्पकालीन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा लेकर धर्मसाधन में लग गये।

विशेष : भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने।

सन् १९५९ में खैरागढ़ में दिग. जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभहस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया।

सन् १९८८ में ७० यात्रियों सहित २५ दिवसीय दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना करते थे।

हम हैं आपके बताए मार्ग पर चलनेवाले

पुत्र : दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल, प्रेमचंद एवं समस्त गिड़िया कुटुम्ब।

पुत्रियाँ : ब्र. ताराबेन एवं ब्र. मैनाबेन।

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का २१ वाँ पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग – १४)

लेखक :

ब्र. हरिभाई सोनगढ़

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

महावीर चौक, खैरागढ़ – ४९१ ८८१ (मध्यप्रदेश)

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन

सन्त सान्निध्य, सोनगढ़ – ३६४२५० (सौराष्ट्र)

अबतक प्रकाशित - ८२००प्रतियाँ
प्रस्तुत आवृत्ति - २,२०० प्रतियाँ
(१ जनवरी, २०१४)

न्यौछावर : दस रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान –

- **अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, शाखा – खैरागढ़**
  श्री खेमराज प्रेमचंद जैन,
  'कहान-निकेतन' खैरागढ़ – ४९१८८१
  जि. राजनांदगाँव (छत्तीसगढ़)
- **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
  ए-४, बापूनगर, जयपुर – ३०२०१५
- **ब्र. ताराबेन मैनाबेन जैन**
  'कहान रश्मि', सोनगढ़ - ३६४२५०
  जि. भावनगर (सौराष्ट्र)

साहित्य प्रकाशन फण्ड

ज्योत्सना बेन, अमेरिका	६०१/-
श्री मुमुक्ष मण्डल, खैरागढ़	५०१/-
सुशीला बेन जयन्ति लाल शाह, नायरोबी	४२५/-
श्री खेमराज प्रेमचंद जैन ह. श्री अभयकुमार शास्त्री, खैरागढ़	३५१/-
कांता बेन हीराचंद मास्टर, सोनगढ़	३०१/-
श्री झनकारीबाई खेमराज बाफना चैरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़	२५१/-
ब्र. ताराबेन-मैनाबेन, सोनगढ़	२५१/-
श्रीमती मनोरमा विनोद कुमार जैन, जयपुर	२५१/-
श्री दुलीचंद कमलेशकुमार जैन ह.श्री जिनेश जैन, खैरागढ़	२०१/-
स्व. ढेलाबाई ह.शोभादेवी मोतीलालजी जैन, खैरागढ़	२०१/-
रीता बेन भूरा भाई, भिलाई	२०१/-
कुमुद बेन महेश भाई, सूरत	२०१/-
श्रीमती ममता रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ह. साकेत जैन	२०१/-
सौ. कंचनदेवी पन्नालाल ह. श्री मनोज जैन, खैरागढ़	१०१/-
श्री पन्नालाल उमेशकुमार जैन, ह. महेशजी छाजेड़, खैरागढ़	१०१/-

卐 अनुक्रमणिका 卐

राजा की कंठ का वैराग्य (नाटक-गद्य)	११
वीर वरांग कुमार का वैराग्य	३४
भ. देशभूषण-कुलभूषण..	५२
पुण्यप्रकाश अदालत में	६१

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, कैसेट लायब्रेरी, साप्ताहिक गोष्ठी आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य २१००१/- में, संरक्षक शिरोमणि सदस्य ११००१/- में तथा परमसंरक्षक सदस्य ५००१/- में भी बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा।

तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से २० तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स), भक्तामर प्रवचन (गुजराती) – इसप्रकार २८ पुष्पों में लगभग ७ लाख से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित होकर पूरे विश्व में धार्मिक संस्कार सिंचन का कार्य कर रही हैं।

जैनधर्म की कहानियाँ भाग १४ के प्रस्तुत संस्करण में ब्र. हरिभाई, सोगढ़ द्वारा लिखित राजा श्री कंठ का वैराग्य (नाटक-गद्य), वीर वरांग कुमार का वैराग्य, भगवान देशभूषण- कुलभूषण.... एवं श्री टोडरमल महाविद्यालय, जयपुर के छात्रों द्वारा तैयार किया गया 'पुण्यप्रकाश अदालत में' नामक (नाटक-गद्य) प्रकाशित किया गया है। इसका सम्पादन व प्रूफ संशोधन पण्डित रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। अत: हम इन सभी के आभारी हैं।

आशा है इसमें समागत महापुरुषों के जीवन-चरित्रों का स्वाध्याय कर पाठक गण, मंचन कर कलाकार गण तथा देखकर दर्शक गण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे।

साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन दातार महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन
अध्यक्ष

प्रेमचन्द जैन
साहित्य प्रकाशन प्रमुख

आवश्यक सूचना

पुस्तक प्राप्ति अथवा सहयोग हेतु राशि ड्राफ्ट द्वारा
"**अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़**" के नाम से भेजें।
हमारा बैंक खाता स्टेट बैंक आफ इण्डिया की खैरागढ़ शाखा में है।

विनम्र आदराञ्जली

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

जन्म
१/१२/१९७८
(खैरागढ़, म.प्र.)

स्वर्गवास
२/२/१९९३
(दुर्ग पंचकल्याणक)

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभिता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक ३ भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे - ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे —ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**बहन**	सुश्री क्षमा जैन
जीजा-	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन

श्री दुलीचंद बरडिया राजनाँदगाँव

पिता- स्व. फतेलालजी बरडिया

श्रीमती सन्तोषबाई बरडिया

पिता-स्व. सिरेमलजी सिरोहिया

सरल स्वभावी बरडिया दंपत्ति अपने जीवन में वर्षों से सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों से जुड़े हैं। सन् १९९३ में आप लोगों ने ८० साधर्मियों को तीर्थयात्रा कराने का पुण्य अर्जित किया है। इस अवसर पर स्वामी वात्सल्य कराकर और जीवराज खमाकर शेष जीवन धर्मसाधना में बिताने का मन बनाया है।

विशेष - पूज्य श्री कानजीस्वामी के दर्शन और सत्संग का लाभ लिया है।

परिवार:

पुत्र

ललित, निर्मल, अनिल एवं सुनील

पुत्रियाँ

चन्दकला बोथरा, भिलाई एवं शशिकला पालावत, जयपुर

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसी कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो व्स्की ह. शीतल विजेन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी प्रशांत भायाणी, अमेरिका
श्रीमती ऊषाबेन प्रमोद सी. शाह, शिकागो
श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
श्रीमती कुसुमबेन चन्द्रकान्तभाई शाह, मुलुण्ड

शिरोमणि संरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
स्व. धापू देवी ताराचन्द गंगवाल, जयपुर
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़
श्री दुलीचंदजी अनिल-सुनील बरड़िया, नांदगांव
स्व. मनहरभाई ह. अभयभाई इन्द्रजीतभाई, मुम्बई

परमसंरक्षक सदस्य

श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरीया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई प्रकाशभाई मेहता, राजकोट
श्री रमेशभाई, नेपाल एवं श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
सरिता बेन ह. पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, तेजपुर
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
श्रीमती रूपाबैन जयन्तीभाई ब्रोकर, मुम्बई
श्री जम्बूकुमार सोनी, इन्दौर

संरक्षक सदस्य

श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
स्व. अमराबाई नांदगांव, ह. श्री घेवरचंद डाकलिया
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्री प्रेमचन्द रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
स्व. श्री जेठाभाई हंसराज, सिकंदराबाद
श्री शांतिनाथ सोनाज, अकलूज
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता
श्री लवजी बीजपाल गाला, बम्बई
स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई
एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली
श्रीमती शांताबेन श्री शांतिभाई झवेरी, बम्बई
स्व. मूलीबेन समरथलाल जैन, सोनगढ़
श्रीमती सुशीलाबेन उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्री बिशम्भरदास महावीरप्रसाद जैन सर्राफ, दिल्ली
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
सौ. सविताबेन रसिकभाई शाह, सोनगढ़
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी उज्जैन,
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी

श्री चिमनलाल ताराचंद कामदार, जैतपुर
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता
श्रीमती ढेलाबाई चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़
श्रीमती तेजबाई देवीलाल मेहता, उदयपुर
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
श्री फूलचंद चौधरी, बम्बई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री लक्ष्मीचंद सुन्दरबाई पहाड़िया, कोटा
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
सौ. चिंताबाई मिट्ठूलाल मोदी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, रायपुर
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
सौ. कंचनदेवी जुगराज कासलीवाल, कलकत्ता
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध.प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
श्रीमती भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
स्व. सुशीलाबेन हिम्मतलाल शाह, भावनगर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री सत्संग महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व. गैंदामल - ज्ञानचन्द - सुमतप्रसाद, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. निधि-निश्चल, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्री अभयकुमार शास्त्री, ह. समता-नम्रता, खैरागढ़
स्व. वसंतबेन मनहरलाल कोठारी, बम्बई
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. गुलाबदेवी लक्ष्मीनारायण रारा, शिवसागर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
स्व. लालचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. ओमलता लालचन्द जैन, भुसावल
श्री योगेन्द्रकुमार लालचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री ज्ञानचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. साधना ज्ञानचन्द जैन लुहाड़िया, भुसावल
श्री देवेन्द्रकुमार ज्ञानचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री महेन्द्रकुमार बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. लीना महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री चिन्तनकुमार महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल जैन, खैरागढ़
अनुभूति-विभूति अतुल जैन, मलाड
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
श्री प्रशम जीतूभाई मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
श्री पारसमल महेन्द्रकुमार, तेजपुर
शाह श्री कैलाशचन्दजी मोतीलालजी, भिलाई
श्रीमती प्रेक्षादेवी प्रवीणकुमारजी शास्त्री, रायपुर

साहित्य प्रकाशन फण्ड

१००१/- रु. देने वाले –
ज्योत्सनाबेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
५०१/- रु. देने वाले –
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह, ह. मधुभाई मुम्बई
पुष्पाबेन गोपालजी, दिल्ली
३०१/- रु. देने वाले –
सौ.चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, ह.अभय, खैरागढ़
२५१/- रु. देने वाले –
झनकारीबाई खेमराज बाफना चे. ट्रस्ट, खैरागढ़
ब्र. ताराबेन मैनाबेन, सोनगढ़
स्व. मोहनीबाई स्मृति ह. राणूलाल जी खैरागढ़
२०१/- रु. देने वाले –
श्री रमेशचन्द शादरे, नागपुर
सौ.कंचनदेवी दुलीचन्द जैन, ह.कमलेश जैन, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई, ह., सौ. शोभा मोतीलाल जैन, खैरागढ़
श्री घेवरचन्द राजेन्द्र कु.ढाकलिया, राजनांदगाँव
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार जैन, जयपुर
श्री निलेश शामजी शाह, गोरेगॉव
श्री विपुल शामजी शाह, गोरेगॉव
श्रद्धा पूजा सतीश शाह, मलाड
श्री ऋषभ-रुचि-चन्द्रकान्त कामदार, राजकोट
अनुभूति-विभूति अतुल जैन, मलाड
श्री पन्नालाल उमेशकुमार छाजेड़, खैरागढ़
१५१/- रु. देने वाले –
श्रीमती कोकिला बेन गाँधी, अहमदाबाद
१११/- रु. देने वाले –
चम्पाबेन गोसलिया स्मृति ह. ताराबेन नंदरबार
तरुबेन मेघाणी, मलाड-मुम्बई
१०१/- रु. देने वाले –
श्री पन्नालाल मनोजकुमार गिड़िया, खैरागढ़
श्री विजय कान्ति लाल जैन, सोनागिर

उत्तम क्षमा

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी एक प्रतिभाशाली असाधारण विद्वान तो थे ही, किन्तु साथ ही अलौकिक महापुरुष भी थे। इनकी विद्वत्ता को देखकर जयपुर नरेश महाराज माधवसिंह भी इनका बड़ा सम्मान करते थे। धर्मचर्चा करने ये कभी-कभी राजदरबार में भी जाया करते थे।

एक बार ये राजा से मिलने के लिए राजभवन में जा रहे थे। राजभवन में पहरे पर एक नया सैनिक खड़ा था। ये रोज की तरह अपने सीधे-साधे साधारण वेश में पहरेदार से बिना कुछ पूछे राजदरबार के भीतर चले गये।

सैनिक ने दौड़कर इनको एक तमाचा जड़ते हुए कहा – 'क्या तुम में इतनी भी सभ्यता नहीं कि कम से कम किसी से पूछ लें। उठाया मुंह और चल दिए राजा से मिलने !' पण्डितजी ने कहा – 'अच्छा भाई ! अब पूछ लेते हैं, अब तो चले जावें !' 'हाँ जाओ !' पण्डितजी ने राजसभा में उस पहरेदार की राजा से बड़ी प्रशंसा की और कहा आपका नया पहरेदार सैनिक कर्तव्यनिष्ठ और ईमानदार आदमी है, इसको कुछ पारितोषिक अवश्य दिया जावे। राजा ने उसकी इतनी प्रशंसा सुनकर उस पहरेदार को बुलाया। पण्डितजी को राजा के बिल्कुल पास बैठा हुआ देखकर पहरेदार काँप उठा। उसने सोचा ये तो कोई राजा का निजी आदमी है और इन्होंने मेरी शिकायत कर दी है।

इतने में राजा ने कहा – 'सैनिक ! पण्डितजी तुम्हारी ईमानदारी की प्रशंसा कर रहे हैं, इसलिए आओ तुम्हें पारितोषिक दिया जा रहा है।' पहरेदार ने व्यंग समझ कर कहा – 'अन्नदाता ! मारो या पालो, मुझसे अपराध तो बन पड़ा है। किन्तु मैंने अनजाने में ही इन्हें मार दिया। मैं नहीं जानता था कि सीधे-साधे वेश में ये कौन महाशय हैं ? पहरेदार ने सब घटना सुनाई। राजा पहरेदार से सच्ची और पूरी घटना सुनकर पण्डितजी की महानता पर आनन्द विभोर हो उठा।

– सन्मति सन्देश से साभार

श्रीकंठ राजा का वैराग्य

प्रस्तावना :- बारहवें तीर्थंकर श्री वासुपूज्य भगवान के समय का यह प्रसंग है। श्रीकंठ राजा वंदना करने के लिए श्री नंदीश्वर द्वीप की ओर जा रहे थे, तब रास्ते में मानुषोत्तर पर्वत के पास अचानक उनका विमान रुक गया, जिससे उन्हें वैराग्य हो गया था। उन्हीं श्रीकंठ राजा के पूर्वभव आदि का यह संवाद है।

प्रथम अंक

(इस प्रथम अंक में श्रीकंठ राजा के पूर्वभव का दृश्य है। पूर्वभव में वे एक व्यापारी के पुत्र थे, तब उन्होंने अपने भाई के निमित्त से किसप्रकार धर्म अंगीकार किया था, यही इस दृश्य में बताया जा रहा है।)

छोटा भाई : नमस्ते भाईसाहब! आप कहाँ से आ रहे हैं?

बड़ा भाई : भाई! जिनमंदिर से आ रहा हूँ।

छोटा भाई : भाईसाहब! क्या आप प्रतिदिन मंदिर जाते हैं?

बड़ा भाई : हाँ भाई! मेरी प्रतिज्ञा है कि जिस नगर में जिन-मंदिर विद्यमान हो, उस नगर में मैं प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने के बाद ही आहार-पानी ग्रहण करूँगा; क्योंकि प्रथम कर्तव्य जिनेन्द्र भगवान के दर्शन का है।

छोटा भाई : भाईसाहब! जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से हमें क्या लाभ है?

बड़ा भाई : सुनो भाई, आज मैं जब जिनमंदिर जा रहा था, तब रास्ते में मुझे एक मुनिराज के दर्शन हुए। मुनिराज ने मुझे आत्मकल्याण करने का अद्भुत उपदेश दिया। उसके बाद मैं जिनमंदिर गया। वहाँ मुनिराज द्वारा दिये गये उपदेश का गहराई से विचार करने

पर मुझे अपूर्व सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई। भाई! जिसका मुझे वर्षों से इंतजार था, आज उस अपूर्ववस्तु की प्राप्ति से मुझे अपार खुशी हो रही है।

छोटा भाई : अहो भाईसाहब! सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से आप जिनेश्वर देव के लघुनंदन हो गये। आपका मनुष्य जन्म सफल हो गया। आपके चरणों में मेरा वंदन हो। अहो! धन्य है वह देश! धन्य है वह पवित्रभूमि! जहाँ आप आत्मा के स्वरूप का विचार कर सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी से भेंट कर मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर हुए।

भाईसाहब! अभी तक मैंने अपने आत्मस्वरूप को नहीं पहिचाना, परन्तु आज आपके आत्मकल्याण की चर्चा सुनकर मुझे बहुत खुशी हुई है। अब आप अपने समान ही मेरी आत्मा का भी उद्धार कीजिए। भाईसाहब! मुनिराज ने अपने उपदेश में क्या कहा था?

बड़ा भाई : प्रिय भाई! आज तुम्हारी पवित्र भावना देखकर मुझे बहुत खुशी हो रही है। मुनिराज ने महान करुणा करके प्रथम तो अरहंत भगवान का स्वरूप समझाया, फिर बाद में यह समझाया कि जैसा अरहंत भगवान का स्वरूप है, वैसा ही अपनी आत्मा का स्वरूप है। अरहंत भगवान की आत्मा में और अपनी आत्मा के स्वभाव में परमार्थ से कोई अन्तर नहीं है। अरहंत भगवान की आत्मा द्रव्य, गुण और पर्याय सर्वप्रकार से शुद्ध है —ऐसा समझने से अपनी आत्मा का वास्तविक स्वरूप भी समझ में आ जाता है। इस संबंध में मुनिराज ने एक श्लोक भी कहा था।

छोटा भाई : वह कौन-सा श्लोक कहा था? मुझे भी बताइये।

बड़ा भाई : वह श्लोक मैंने लिख लिया था। लो, इसे स्वयं ही पढ़ लो।

जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं।।

जो जानता अरहंत को, गुण द्रव्य अरु पर्याय से।
वह जानता निज आत्म को, दृगमोह उसका नाश हो।।

छोटा भाई : भाईसाहब! वास्तव में इस गाथा में उद्धृत भावों के समान ही आपने आत्मा में परिणमन किया है। आपने अरहंत भगवान के समान अपने वास्तविक स्वरूप को समझकर मोह का नाश किया है। अब आपने मुझे भी मोहक्षय करने का उपाय बतलाकर मुझ पर महान उपकार किया है। अहो! सम्यग्दर्शन की असीम महिमा को मैंने आज समझा है। भाईसाहब! सम्यग्दर्शन में आपको कैसा आनंद आया?

बड़ा भाई : अहो भाई! इस आनंद की क्या बात? जैसा सिद्ध भगवान का आनंद है, वैसा ही यह आनंद है। अरे भाई! इस आनंद का क्या कहना? इसे कैसे बतावें? यह तो अन्तर के अनुभव की वस्तु है। परभावों से भिन्न जो आनंद है, उसकी तुलना जगत के किसी भी पदार्थ से नहीं की जा सकती।

छोटा भाई : हाँ भाईसाहब! आपकी बात सत्य है। आपके

प्रताप से मुझे भी आत्मा के प्रति रुचि हुई है। अब मैं भी आपके समान आत्मानुभव शीघ्र करूँगा, परन्तु मेरी एक प्रार्थना है।

बड़ा भाई : प्रिय भाई! खुशी से कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है?

छोटा भाई : भाईसाहब! जिसप्रकार अभी आपने मुझे धर्मोन्मुख किया, उसीप्रकार भविष्य में भी जब जरूरत पड़े, तब आप मुझे धर्मोपदेश देकर दृढ़ कीजिएगा —यही मेरी प्रार्थना है।

बड़ा भाई : हाँ भाई! अवश्य, मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि यदि स्वर्ग में भी रहा तो तुम्हें धर्मोपदेश देने जरूर आऊँगा।

छोटा भाई : भाईसाहब! आपका परम-उपकार है। अब आप कहाँ जा रहे हैं? मैं भी आपके साथ चलता हूँ।

बड़ा भाई : प्रिय भाई! अवश्य चलो।

(दोनों भाई साथ-साथ जाते हैं।)

जिनमन्दिर की वैयावृत्ति सम्यक्त की प्राप्ति करे है तथा मिथ्याज्ञान, मिथ्याश्रद्धान का अभाव करे है।

स्वाध्याय संयम, तप, व्रत शीलादि गुण जिनमन्दिर का सेवनतें होय, नरक तिर्यंचादि गतिनि में परिभ्रमण का अभाव होय। जिनमन्दिर समान कोई उपकार करनेवाला जगत में दूजा नहीं है।

– पण्डित सदासुखदासजी, टीका रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पृ. 221

द्वितीय अंक

(इस द्वितीय अंक में भी श्रीकंठ राजा के पूर्वभव का दृश्य है, जिसमें वे वणिकपुत्र शांतिलाल सेठ हैं। उनके सत्समागम और उपदेश से उनके अन्य मित्र किसप्रकार जुआ-व्यसन का त्याग करते हैं, उसका वर्णन है।)

(दो व्यापारियों का मंच पर प्रवेश)

मगनलाल : मित्र! क्या बात है? कुछ परेशान से दिख रहे हो।

छगनलाल : हाँ भाई! आज सट्टे के बाजार में पाँच हजार का नुकसान हो गया है, उसकी चिंता लगी है।

मगनलाल : अरे! इसमें चिंता की क्या बात? आज जुए में पाँच हजार का एक दाव और लगा दो। बस फिर क्या.....?

छगनलाल : क्या बात है आज शांतिलाल सेठ दिखाई नहीं दे रहे हैं?

मगनलाल : वैसे तो सबसे पहले आ जाते थे, परन्तु आज उन्हें किसने रोक लिया? उनके बिना तो अपने खेल में मजा ही नहीं आता? (प्रथम अंक का छोटा भाई ही शांतिलाल सेठ है। वह मंच पर प्रवेश करता है)

छगनलाल : वह देखो, शांतिलाल सेठ आ रहे हैं।

मगनलाल : आइये! आइये!! सेठजी आज तो पाँच-पाँच हजार रुपये दाव पर लगाना तय हुआ है, परन्तु आपके बिना सब रुका है।

शांतिलाल सेठ : देखो भाई! मेरे सामने जुए का नाम भी मत लेना। आज से मैं तुम्हारी जुआ-मंडली में नहीं रहूँगा। अभी तक तो पापभाव में ही जीवन बिताता रहा हूँ, परन्तु आज से मैं अपना जीवन धर्म-मार्ग में ही लगाऊँगा।

छगनलाल : अरे, अरे! शांतिलाल सेठ! तुम यह क्या कह रहे हो?

शांतिलाल सेठ : हाँ भाई! मैं सच कह रहा हूँ। जुआ खेलना महापाप है। अपने समान सज्जन पुरुषों को यह शोभा नहीं देता। अनंत-अनंत काल में यह मनुष्य जन्म मिला है। उसे पापभावों में कैसे व्यर्थ गमा दें। अब तो ऐसा उपाय करना है कि जिससे आत्मा का हित होवे।

मगनलाल : अरे भाई! आज अचानक यह वैराग्य कहाँ से उमड़ आया है?

शांतिलाल सेठ : प्रिय भाइयो! मैं कुछ बातें करने के लिये ही आप लोगों के पास आया हूँ। आज मेरे बड़े भाई ने मुझे अपूर्व शिक्षा दी है। हम सबको जो यह अमूल्य मनुष्यभव और जैनधर्म मिला है, उसी की सार्थकता के लिये कुछ करना चाहिये।

छगनलाल : आपके भाई ने जीवन की सार्थकता का आपको क्या उपाय बताया है? हमें भी बताओ।

शांतिलाल सेठ : सर्वप्रथम तो यह जुआ जैसा महापापभाव हम सभी को शोभा नहीं देता। इस पाप के फल से तो नरकों के घोर दु:खों को सहन करना पड़ेगा। इसलिए यह तीव्र पापभाव छोड़ना ही योग्य है और हम सभी को प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करना चाहिये, जिनेन्द्र भगवान के स्वरूप को समझना चाहिये और उन्होंने किसप्रकार मोक्ष प्राप्त किया — यह भी जानना चाहिये, ताकि हम भी मुक्ति-प्राप्ति का प्रयत्न कर सकें।

मगनलाल : क्या यह बात सुनकर ही आपको वैराग्य हो गया?

शांतिलाल सेठ : हाँ भाई! अपने बड़े भाई की यह चर्चा सुनकर मेरे अंतर में जिज्ञासा हुई। फिर मैं अपने भाईसाहब के साथ मुनिराज के पास गया। उन मुनिराज के श्रीमुख से अपूर्व कल्याणकारी उपदेश को सुनकर मेरी खुशी का ठिकाना ही न रहा। मैंने मुनिराज के पास ही जुआ-आदि समस्त पापों का त्याग कर दिया तथा जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने की प्रतिज्ञा ली है।

छगनलाल : अहो, धन्य हो! आपके हृदय-परिवर्तन को धन्य हो!! अब हमारी भावना भी इस उत्तम कार्य में प्रवृत्त होने की हो रही हैं, परन्तु आज मैं सट्टे में पाँच हजार रुपये हार गया हूँ, इसलिए बहुत परेशान हूँ।

शांतिलाल सेठ : मित्र! तुम चिन्ता मत करो! यदि तुम जीवनभर के लिए जुए का त्याग करो तो मैं तुम्हें पाँच हजार रुपये देने को तैयार हूँ।

छगनलाल : भाई! तुम्हारे इस उपकार को मैं कभी नहीं भूलूँगा। मैं आपके सामने जुआ-आदि सभी पापों का हमेशा के लिए त्याग करता हूँ और आपके समान ही प्रतिदिन जिनेन्द्रदेव के दर्शन करने की भी प्रतिज्ञा लेता हूँ। आपका महान उपकार है, जो आपने मुझे महापाप से बचाकर सन्मार्ग में लगाया।

मगनलाल : हाँ भाई! आप दोनों की बातें सत्य हैं। मैं भी आप लोगों के समान जुआ-आदि पापों को छोड़कर प्रतिदिन जिनदर्शन किया करूँगा। अहो! धन्य है आज का दिन, हम सभी को सन्मार्ग की प्राप्ति हुई और नरक के घोर पापों से हमारा उद्धार हो गया।

शांतिलाल सेठ : भाई! यह सब तो जैनधर्म और मुनिराज का प्रताप है। (चलो, आज के इस शुभ प्रसंग की खुशी में हम सभी भक्ति करें।)

छगनलाल : हाँ भाई चलो!

शांतिलाल सेठ एवं अन्य मिलकर गाते हैं:-

गा रे भैया......,गा रे भैया......,गा रे भैया......गा।।
प्रभु गुण गा तू समय न गवाँ... गा रे भैया ।।टेक।।

किसको समझे अपना प्यारे, स्वारथ के सब रिश्ते सारे।
फिर क्यों प्रीति लगाये..... ओ भैयाजी...! गा रे भैया।।१।।

दुनियाँ के सब लोग निराले, बाहर उजले, अन्दर काले।
फिर क्यों मोह बढ़ाये.... ओ बाबूजी....! गा रे भैया...।।२।।

मिट्टी की यह नश्वर काया, जिसमें आतमराम समाया।
उसका ध्यान लगा ले.... ओ दादाजी ....! गा रे भैया।।३।।

स्वारथ की दुनिया को तजकर, निशदिन प्रभु का नाम जपाकर।
सम्यक् दर्शन पा ले.... ओ काकाजी...! गा रे भैया...।।४।।

शुद्धातम को लक्ष्य बनाकर, निर्मल भेदज्ञान प्रगटा कर।
मुक्ति वधू को पा ले.... ओ लालाजी...! गा रे भैया...।।५।।

अलप भव-थिति जाकी

जाके उर अंतर, सुद्रिष्टि की लहर लसी,
विनसी मिथ्यात मोहनिद्रा की ममारखी[1]।
सैली जिनशासन की फैली जाकै घट भयौ,
गरब कौ त्यागी षट-दरब कौ परखी।।
आगम कै अच्छर परे हैं जाके श्रवन मैं,
हिरदै-भंडार मैं समानी[2] वानी आरखी।
कहत बनारसी अलप भव-थिति जाकी,
सोई जिनप्रतिमा प्रवांनै जिन-सारखी।।3।।

– स.ना.गुणस्थान अधिकार

1. मूर्छा/अचेतना। 2. प्रवेश कर गई/समा गई।

तृतीय अंक

(इन्द्रसभा)

(इस तृतीय अंक में स्वर्ग के इन्द्र महाराज के जन्म तथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के विषय में इन्द्र महाराज तथा देवों के बीच हुए वार्तालाप का दृश्य है। इन्द्रसभा लगी है। चार देव उसमें बैठे हैं। इन्द्रासन रिक्त है। एक ओर उत्पाद शैय्या है। उसमें श्वेत वस्त्र ओढ़कर इन्द्र महाराज सो रहे हैं।)

दिव्यकुमार : बन्धुओ! आज अपने इन्द्र महाराज की आयु पूरी हो गयी है। अहो! इस क्षणभंगुर संसार में इन्द्र जैसे भी अमर नहीं हैं। इस संसार में मनुष्य, तिर्यंच, देव और नरक ये सभी चारों गतियाँ अध्रुव हैं, नश्वर हैं। एक सिद्धदशा ही ऐसी ध्रुव है कि जिसमें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। ऐसी अविनाशी सिद्धगति हम कब प्राप्त करेंगे।

सिद्धकुमार : हाँ, सच ही कहा है कि....

लक्ष्मी, शरीर, सुख-दुख अथवा शत्रु-मित्र जनो अरे!
जीव को नहीं कुछ ध्रुव, उपयोग आत्मा एक जीव है।।
मरता अकेला जीव, एवं जन्म एकाकी करे।
पाता अकेला ही मरण, अरु मुक्ति एकाकी वरे।।

मुक्तिकुमार : जिसप्रकार पाँच भावों में पंचम परम पारिणामिक भाव परममहिमावंत है, उसीप्रकार पाँच गतियों में पंचमगति परम महिमावंत है, जिसप्रकार उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक यह चारों भाव क्षणिक हैं और पंचम परमपारिणामिक भाव ध्रुव है, उसीप्रकार संसार में देव, नर, मनुष्य, नरक – ये चारों गतियाँ क्षणिक हैं, मात्र सिद्धदशा ही ध्रुव, अचल और अनुपम है।

प्रकाशकुमार : अपने इन्द्र महाराज ने यहाँ से मनुष्य लोक में जन्म लिया है और इसी भव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्णता करके अभूतपूर्व ऐसी सिद्धदशा को प्राप्त करेंगे। अहो, धन्य है उस दशा को।

सिद्धकुमार : आज अपने इन्द्र महाराज चले गये, तो क्या अब यह इन्द्रासन खाली रहेगा ?

मुक्तिकुमार : नहीं देवो! यह खाली नहीं रहेगा, तुरंत ही मनुष्य लोक में से कोई आराधक जीव आकर यहाँ इन्द्र के रूप में उत्पन्न होंगे तथा इन्द्रासन पर विराजमान होंगे।

(उत्पाद शैय्या से इन्द्र अचानक उठते हैं। अंदर से बाजों की आवाज होती है।)

दिव्यकुमार : देखो, देखो! इन्द्र महाराज का जन्म हुआ।

(सब एकसाथ खड़े होकर हाथ जोड़कर कहते हैं। पधारो! इन्द्र महाराज पधारो! वे आकर इन्द्रासन पर विचारमग्न होकर बैठते हैं।)

प्रकाशकुमार : क्या आज्ञा है महाराज?

इन्द्र : अहो, देवो! जैनधर्म के परम प्रताप से मुझे यह विभूति मिली है। चलो, सबसे पहले जिनेन्द्रदेव की पूजा करें।

दिव्यकुमार : यह पूजन की सामग्री लीजिये।

(सब हाथ में अर्घ्य लेकर पूजा करते हैं।)

तेरी भक्ति बसी मनमाहीं, मैं तो पूजूँ पद हरषाई।
शाश्वत जिनवर बिम्ब विराजे, मध्यलोक के माहीं।
अष्टद्रव्य से जिनवर पूजूँ, पद अनर्घ्य सुख पावूँ।।

इन्द्र : ***ॐ ह्रीं स्वर्गलोकस्थ विराजमान शाश्वत जिनबिम्बसमूह चरणकमलपूजनार्थे अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।***

प्रकाशकुमार : हे नाथ! इसके पहले भव में आप कहाँ थे?

इन्द्र : देवो! इसके पहिले भव में मैं व्यापारी पुत्र था, वहाँ मुझे मुनिराज के प्रताप से सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ। मुनिदशा अंगीकार करने की मेरी तीव्र भावना थी, परन्तु वह धन्य अवसर प्राप्त होने के पहिले ही आयु पूरी हो गई और यहाँ पर जन्म हुआ।

सिद्धकुमार : महाराज! क्या आपने पूर्वभव में धर्म धारण किया, उसके फल में यह इन्द्र पद मिला है।

इन्द्र : नहीं, सिद्धकुमारजी! ऐसा नहीं है। यह इन्द्र पद का जन्म हुआ, वह तो राग का ही फल है। धर्म के फल में संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। धर्म का फल तो आत्मा में मिलता है।

सिद्धकुमार : हे नाथ! धर्म का फल आत्मा में किसप्रकार मिलता है?

इन्द्र : देखो कुमारजी! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभाव ही धर्म है। जितने अंश में वीतरागभाव की आराधना करे, उतने अंश में जीव को वर्तमान में ही अपूर्व शांति का वेदन होता है। अंतर में चैतन्य का अनाकुल सुख प्रगट होता है। अतीन्द्रिय आत्मिक आनंद से वह तृप्त हो जाता है।

मुक्तिकुमार : महाराज! क्या वह आनंद इस इन्द्र पद से भी अधिक होगा?

इन्द्र : अरे देवो! यह इन्द्र पद तो क्या, ऐसे अनंत इन्द्र पद की विभूति भी आत्मा के सुख के एक अंश के बराबर भी नहीं है। जगत के सर्व सुख की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि के सुख की जाति ही भिन्न है, अलग है।

मुक्तिकुमार : तो क्या सम्यग्दृष्टि को ऐसे वैभवशाली इन्द्र पद की इच्छा नहीं होती?

इन्द्र : नहीं, सम्यग्दृष्टि जीव निःकांक्षित गुण सहित होते हैं, अतः उन्हें वैभव की वांछा नहीं होती। जिसने चैतन्यसुख का स्वाद या आनंद लिया हो, उसे बाहर के पदार्थों की इच्छा कैसे होगी ?

दिव्यकुमार : महाराज! सम्यदृष्टि जीव में और कौन-कौन से गुण होते हैं?

इन्द्र : अहो! समकिती के अपार गुणों की क्या बात ? समकिती के गुण अपार हैं, उनमें ८ गुण प्रधान हैं।

दिव्यकुमार : वे आठ गुण कौन-कौन से हैं?

इन्द्र : निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि,

उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना—इसप्रकार सम्यग्दृष्टि के ८ गुण मुख्य हैं।

सिद्धकुमार : प्रभो! समकिती का वात्सल्यगुण कैसा होता है?

इन्द्र : अंतर में अपने चिदानंदस्वरूप तथा रत्नत्रयधर्म के प्रति अपार प्रीति होती है —यह समकिती का निश्चय वात्सल्य है तथा बाहर में देव-गुरु-धर्म और अपने सार्धर्मियों के प्रति अपार वासल्य होता है, —यह समकिती का व्यवहार वात्सल्य है। जैसे गाय को अपने बच्चे के प्रति प्रीति होती है, बालक को अपनी माता के प्रति प्रेम होता है, उसीप्रकार धर्मी को अपने साधर्मियों के प्रति वात्सल्यभाव होता है अर्थात् अपने साधर्मी को देखकर धर्मात्मा प्रसन्न होते हैं।

सिद्धकुमार : महाराज! आपने वात्सल्यगुण का बहुत सुन्दर स्वरूप समझाया। अब समकिती का निःशंकित गुण कैसा होता है, वह समझाइये?

इन्द्र : सम्यग्दृष्टि जीव अपने ज्ञायकस्वभाव के श्रद्धान-ज्ञान में निःशंक होते हैं, कैसा भी भयंकर प्रसंग उपस्थित हो जाय तो भी वे अपने स्वरूप की श्रद्धा से लेशमात्र भी डिगते नहीं एवं स्वरूप में संदेह करते नहीं। उसीप्रकार वीतरागी देव-गुरु-धर्म तथा जिनवचन में भी धर्मात्मा कभी संशय नहीं करते। कोई भी भय, लज्जा या लालच से जिनमार्ग से च्युत होकर विपरीत मार्ग का आदर कभी नहीं करते —ऐसा सम्यग्दृष्टि का निःशंकित गुण है।

मुक्तिकुमार : प्रभो! सम्यग्दृष्टि के गुणों का वर्णन सुनने में हमको बहुत आनंद आ रहा है। अब कृपा करके प्रभावना गुण को समझाइये?

इन्द्र : निश्चय से तो अपने ज्ञानानंदस्वरूप की दृष्टि में समय-समय शुद्धता की वृद्धि करके समकिती जीव अपने आत्मा में धर्म की प्रभावना करते हैं और स्वयं ने जो अपूर्व धर्म प्राप्त किया है, वह धर्म जगत के दूसरे जीव भी प्राप्त करके आत्मकल्याण करें—ऐसी पवित्र भावना धर्मी को होती है। इसप्रकार धर्मी जीव वीतरागी देव-गुरु-धर्म की महा-प्रभावना करते हैं। जिनबिम्ब प्रतिष्ठा और पंचकल्याणक

महोत्सव आदि द्वारा जैनधर्म की महाप्रभावना करते हैं—यह है समकिती का प्रभावना गुण।

सिद्धकुमार : महाराज! अभी तो भरतभूमि में धर्मकाल चल रहा है, वासुपूज्य आदि तीर्थंकर भी विचरण कर रहे हैं, इसलिए अभी वहाँ ऐसे प्रभावना आदि गुण के धारक अनेक संत धर्मात्मा नजर में आ रहे हैं, परन्तु जब कलयुग आयेगा और साक्षात् तीर्थंकर भगवान का विरह होगा, तब भरतक्षेत्र का क्या होगा?

इन्द्र : भाई! तब अनेक वीतरागी धर्मात्माओं का जन्म होगा और वे भरतक्षेत्र में तीर्थंकर जैसा महान काम करेंगे।

सिद्धकुमार : ऐसे कौन-कौन से संत होंगे?

इन्द्र : परमपूज्य महावीर भगवान के बाद परमपूज्य गौतमस्वामी होंगे, फिर परमपूज्य धरसेनाचार्य आदि होंगे। उनके बाद परमपूज्य कुन्दकुन्दाचार्य आदि होंगे। वे इस भरतक्षेत्र में तीर्थंकर के समान कार्य करेंगे। उनके पश्चात् परमपूज्य नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती आदि होंगे, उनके प्रताप से जगह-जगह जिनशासन की प्रभावना होगी, फिर परमपूज्य अमृतचंद्राचार्य, जयसेनाचार्य और पद्मप्रभमलधारिदेव आदि महान संत उत्पन्न होंगे। **(हर्षनाद)**

मुक्तिकुमार : अरे, अरे! यह घंटानाद कहाँ हो रहा है?

इन्द्र : देवो! आज से नंदीश्वरद्वीप में अष्टाह्निका महोत्सव का प्रारम्भ हो रहा है। चलो, हम भी नंदीश्वर द्वीप चलें।

सब देव : (खड़े होकर) हाँ, चलिये महाराज!

इन्द्र : देवो! इन सब विमानों को सीधे न ले जाकर पहले वानरद्वीप में श्रीकंठ राजा के महल के ऊपर से हमको ले जाना है।

मुक्तिकुमार : महाराज! ऐसा क्यों?

इन्द्र : देखो, देवो! पूर्वभव में मेरे एक छोटे भाई थे, उनको सम्बोधन करने के लिये मैंने वचन दिया है। अभी वे श्रीकंठ राजा के रूप में हैं, उनके महल के ऊपर से विमान को जाते हुये देखकर उनको तुरन्त ही जातिस्मरण ज्ञान होगा तथा वे वैरागी बनेंगे।

सभी देव : बहुत सुन्दर! चलिये महाराज!

हिलमिल कर सब भक्त चलो नंदीश्वर जिनधाम में।
नंदीश्वर जिनधाम में, नंदीश्वर जिनधाम में, नंदीश्वर जिनधाम में।।
अष्टमद्वीप में जो है राजे, शाश्वत जहाँ जिनबिंब विराजे।
दिव्य जिनालय बावन शोभें, चहुँ दिशि बावड़ी पर्वत सोहें।।
महिमा अति भगवान की, महिमा अति भगवान की।।१।।
जिनबिम्बों की शोभा भारी, वीतरागता दर्शक प्यारी।
मानस्तंभ है रत्न का भारी, करें देव सेवा सुखकारी।।
जय बोलो! जिनेश्वर भगवान की, जिनेश्वर भगवान की।।२।।

चतुर्थ अंक

(श्रीकंठ राजा की सभा)

(तृतीय अंक में जो इन्द्रसभा थी, उसी को श्रीकंठ राजा की सभा में परिवर्तित करना है। सिंहासन खाली है।)

दरबारी : सोने की छड़ी, चांदी की मशाल, जरियन का जामा, मोतियों की माल, जैनधर्म के परमभक्त श्रीकंठ राजा की जय हो, जय हो, जय हो! दरबार में राजाजी पधार रहें हैं, सावधान!

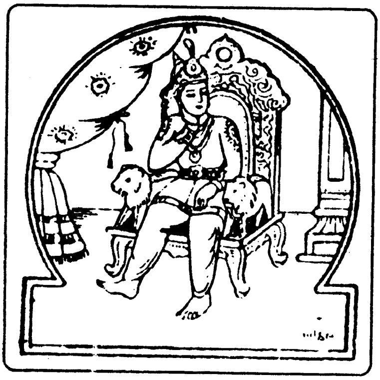

(सभी दरबारी खड़े हो जाते हैं। श्रीकंठ राजा आकर बैठ ज़ाते हैं।)

राजा श्रीकंठ : दीवानजी! राज्य-व्यवस्था के क्या समाचार हैं?

दीवानजी : महाराज! आपके प्रताप से राज्य की व्यवस्था भली प्रकार चल रही है। जैनधर्म के प्रताप से सर्वत्र शांति है।

राजा श्रीकंठ : भंडारीजी! आप क्या समाचार लाये हैं?

भंडारीजी : महाराज! आपके पुण्य-प्रताप से राज्य का भंडार भरपूर है। दूसरी खुशी का समाचार यह है कि आज आपका जन्मदिन है। इसकी खुशी में राज्य के खजाने में से पाँच लाख सोने की मुहरों के दान करने का निश्चय किया है।

राजा श्रीकंठ : बहुत अच्छी बात है, परन्तु इस रकम का उपयोग करोगे कैसे? नगरसेठजी! इस संबंध में क्या विचार है?

नगरसेठ : महाराज! हमने यह विचार किया है कि सवा लाख सोने की मोहरें जिनमंदिर के उपयोग में खर्च की जावें। सवा लाख मोहरें जिनवाणी की प्रभावना में लगाई जावें और सवा लाख मोहरों

से एक जैन विद्यालय की स्थापना कराने की योजना है, जिसमें देश-विदेश के बालक रहकर जैनधर्म का अभ्यास कर सकें तथा शेष सवा लाख सोने की मोहरों से साधर्मीजनों की सहायता की जावें।

राजा श्रीकंठ : बहुत अच्छी बात है। अब मेरी ओर से पांच लाख सोने की मोहरें जहाँ-जहाँ जिनमंदिरों का जीर्णोद्धार एवं निर्माण कार्य चल रहा हो, वहाँ भेजी जावें।

राजा श्रीकंठ : सेनापतिजी! क्या समाचार हैं?

सेनापति : महाराज! राज्य में सर्वत्र शांति है। कहीं भी लड़ाई का नामो-निशान नहीं है।

राजा श्रीकंठ : राज्य-सम्बन्धी चर्चा पूरी हो गई। अब सभा समाप्त की जाये।

दीवानजी : महाराज! आज आपके साथ धर्मचर्चा का लाभ मिले —ऐसी हमारी भावना है।

राजा श्रीकंठ : यह तो बहुत ही प्रसन्नता की बात है। आपको जो जानने की इच्छा हो, खुशी से पूछिये।

दीवानजी : महाराज! इस जगत की रचना किसप्रकार हुई है?

राजा श्रीकंठ : सुनो! इस जगत में सबसे ऊपर अनंत सिद्ध विराजमान हैं। उनके शरीर नहीं है, वाणी, राग, द्वेष कुछ भी नहीं है, बस एक उनका आत्मा चैतन्य-बिम्ब रूप में विराजमान है।

सेनापति : वे सिद्ध भगवान वहाँ क्या करते हैं?

राजा श्रीकंठ : वे अनंत आत्मिक सुख का वेदन करते हैं।

आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद में लीन हैं —ऐसे सिद्ध भगवान जगत के शिरोमणि हैं, जगत के लिए परम ध्येय हैं।

भंडारीजी : मध्यलोक कहाँ है?

राजा श्रीकंठ : उसके बाद मध्यलोक आता है, जहाँ हम रहते

हैं, यही तो मध्यलोक है। यह मध्यलोक अनेक विचित्रताओं से ओतप्रोत और महान वैभवशाली है।

दीवानजी : मध्यलोक की क्या विशेषता है?

राजा श्रीकंठ : मध्यलोक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मुक्तदशा की प्राप्ति मध्यलोक से ही हो सकती है।

जम्बू द्वीप

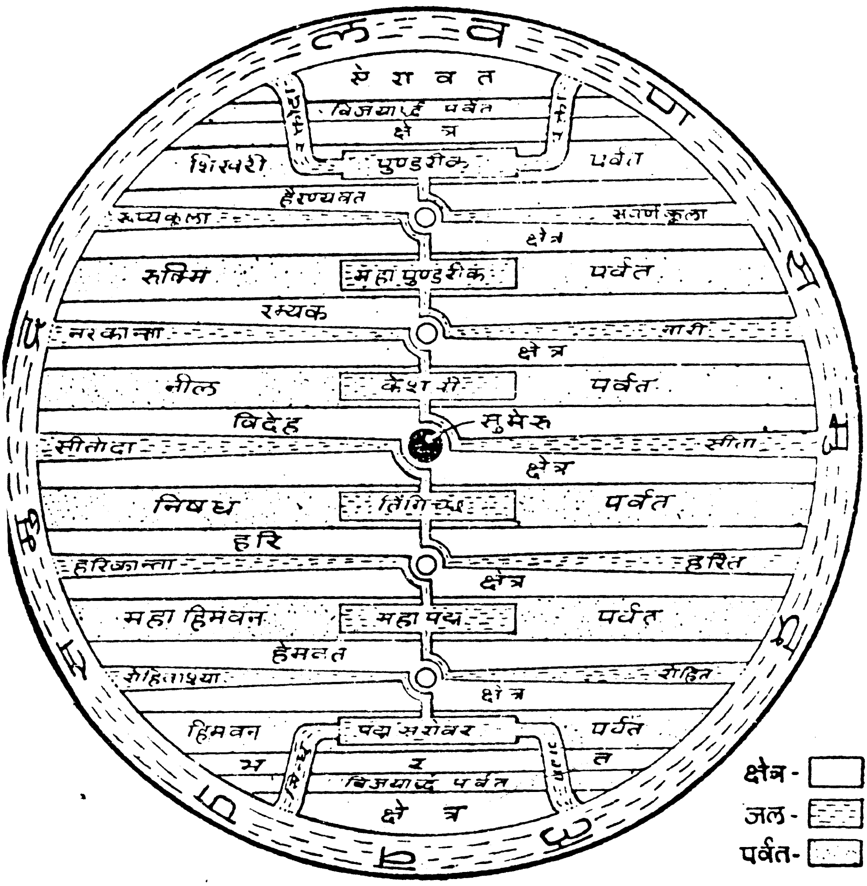

भंडारीजी : क्या पूरे मध्यलोक से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं?

राजा श्रीकंठ : मध्यलोक में भी असंख्य द्वीप-समुद्र हैं, उनमें से मात्र ढाई द्वीप से ही मुक्ति को प्राप्त हो सकते हैं।

सेनापति : हम जहाँ रहते हैं, उस द्वीप का क्या नाम है?

राजा श्रीकंठ : इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप है। इस जम्बूद्वीप में अपने देश का नाम भरतक्षेत्र है। जहाँ सीमंधर भगवान विराजमान हैं, उसका नाम विदेहक्षेत्र है। भरतक्षेत्र और विदेहक्षेत्र दोनों ही जम्बूद्वीप में आते हैं।

सेनापति : वाह! सीमंधर भगवान और हम एक ही द्वीप में रहते हैं।

राजा श्रीकंठ : हाँ, भगवान और हम एक ही द्वीप में रहते हैं। इतना ही नहीं, सीमंधरस्वामी, युगमंधरस्वामी, बाहुस्वामी, सुबाहुस्वामी आदि सभी बीस तीर्थंकर भी इस जम्बूद्वीप में ही विराजमान हैं।

सेनापति : अहो! धन्य हैं महाराज! अभी भी हम सीमंधर भगवान के पास जा सकते हैं —यह जानकर हम भी धन्य हुए।

(अचानक विद्याधर आते हैं।)

राजा श्रीकंठ : अहो! यह हमारे मित्र विद्याधर आये हैं, अरे! तुम तो बहुत दिनों में दिख रहे हो। कहाँ गये थे?

विद्याधर : मैं सारे जम्बूद्वीप के तीर्थों की यात्रा करने गया था। विदेहक्षेत्र में भगवान के साक्षात् दर्शन किये, भरत क्षेत्र में शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखरजी की यात्रा की और वासुपूज्य भगवान की दिव्य-ध्वनि भी सुनी।

राजा श्रीकंठ : हे मित्र! भगवान की दिव्य-ध्वनि में आये संसार से छूटने का उपाय संक्षेप में हमें भी तो बताओ?

विद्याधर : दिव्य-ध्वनि में ऐसा आया कि निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही संसार से छूटने का उपाय है। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा के आश्रय से होते हैं। पर के आश्रय से या व्यवहार के आश्रय से मोक्षमार्ग नहीं मिलता, इसलिए हे जीवो! तुम पराश्रयबुद्धि को छोड़कर स्वभाव का आश्रय करो।

दीवानजी : आपने और क्या सुना?

विद्याधर : यह सुना कि आत्मा का स्वभाव ज्ञान है। वह ज्ञान व्यवस्थितपने सबको जानने के स्वभाववाला है। ज्ञान में या ज्ञेय में किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती। सबकुछ व्यवस्थित है।

सेनापति : तो फिर पुरुषार्थ करना चाहिये या नहीं?

विद्याधर : अरे भाई! ज्ञान और ज्ञेय दोनों के स्वभाव का निर्णय करना ही सम्यग्दर्शन का कारण है। उसमें स्वभाव-सन्मुखता का अपूर्व पुरुषार्थ आ जाता है। अत: भगवान कहते हैं कि हे जीवो! तुम स्वसन्मुख होकर अपने ज्ञानस्वभाव का निर्णय करो। तुम्हारे में सर्वज्ञता प्राप्त करने का सामर्थ्य है, उसे पहिचानो!

राजा श्रीकंठ : वाह! बहुत ही उत्तम चर्चा है। भाई! यही जैनशासन का मूल रहस्य है।

दीवानजी : आपने और किन-किन तीर्थों की वंदना की?

विद्याधर : मेरु पर्वत के ऊपर शाश्वत जिनमंदिरजी के दर्शन किये। उसके बाद जम्बूद्वीप से बाहर लवणसमुद्र को पार करके मैं धातकीखण्ड द्वीप में गया।

भंडारीजी : वहाँ आपने क्या देखा?

विद्याधर : वहाँ अनेक तीर्थंकर भगवान विराजमान हैं। मैंने भक्तिपूर्वक उनके दर्शन किये। फिर कालोदधि समुद्र पार करके मैं पुष्करवर द्वीप में गया। वहाँ अनेक तीर्थंकर भगवान विराजमान थे। उनके भी दर्शन किये। उसके बाद मानुषोत्तर पर्वत पर शाश्वत जिनमंदिरों के भी दर्शन किये।

राजा श्रीकंठ : उसके बाद क्या किया?

विद्याधर : इसप्रकार ढ़ाई द्वीप के सभी तीर्थों की वंदना करके मैं यहाँ आया हूँ।

दीवानजी : आप और आगे क्यों नहीं गये?

विद्याधर : भाई! ढ़ाई द्वीप तक ही मनुष्य जा सकते हैं। उसके

आगे मनुष्य नहीं जा सकते। इसी कारण यह ढ़ाई द्वीप मनुष्यक्षेत्र कहलाता है।

भंडारीजी : इस मनुष्यक्षेत्र के बाहर क्या है?

विद्याधर : मनुष्यक्षेत्र के बाहर अनेक द्वीप और समुद्र हैं।

सेनापति : भाई! आगे आठवाँ नंदीश्वरद्वीप आता है। उस द्वीप में अद्भुत जिनमंदिर हैं। मंदिरों में रत्नों की शाश्वत जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। वहाँ की शोभा तो सचमुच ही अद्भुत है। जिसप्रकार आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति अनादि से है, उसीप्रकार वहाँ प्रतिबिम्ब रूप वीतरागी जिनप्रतिमा भी अनादि से है। अहो! उनकी परम अद्भुत शोभा है। ऐसा लगता है मानो वीतरागी मुद्रा मौन रहकर मोक्षमार्ग का उपदेश दे रही हो।

राजा श्रीकंठ : क्या हमको उनके दर्शन नहीं हो सकते?

विद्याधर : भाई! वहाँ देव ही जा सकते हैं। वहाँ मनुष्य नहीं जा सकते हैं। कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ माह के शुक्ल पक्ष में अष्टमी से पूर्णिमा तक अष्टाह्निका पर्व आता है। तब इन्द्र और देव नंदीश्वरद्वीप में जाकर भक्तिपूर्वक विशाल उत्सव मनाते हैं। कुछ ही दिनों में कार्तिक की अष्टाह्निका आनेवाली है। तब इन्द्र वहाँ जाकर भक्ति करेंगे और हम यहीं से परोक्षरूप में अर्घ्य चढ़ायेंगे। (पर्दा गिरता है।)

राजा श्रीकंठ : अरे! क्या बात है, आज राजकुमार दिखाई नहीं दे रहे हैं?

दीवानजी : छोटे-छोटे राजकुमार जंगल में घूमने गये थे। कहीं रास्ता न भूल गये हों?

सेनापति : नहीं महाराज! भूल नहीं सकते; क्योंकि अंगरक्षक उनके साथ हैं। (अंगरक्षक आता हैं।)

राजा श्रीकंठ : अरे! यह अंगरक्षक तो आ गये हैं। क्यों भाई! राजकुमार कहाँ हैं?

अंगरक्षक : अन्नदाता! मैं यही समाचार देने आया हूँ। जब

हम जंगल में बहुत दूर-दूर गये, तब वहाँ महान पुण्ययोग से केवली भगवान की गंधकुटी के दर्शन हुये। अपने दोनों राजकुमारों ने वहीं दीक्षा लेकर दिगम्बर मुनिदशा धारण कर ली।

राजा श्रीकंठ : वाह! धन्य है इन बाल कुंवरों को, जिन्होंने इतनी छोटी उम्र में ही राज्य और माता-पिता के मोह को छोड़कर आत्मसाधना में अपना जीवन अर्पित कर दिया, परन्तु वे हमारी मंजूरी लेने घर क्यों नहीं आये?

अंगरक्षक : महाराज! मैंने उन्हें बहुत समझाया, पर वे कहने लगे कि यह समाचार सुनकर पिताजी बहुत प्रसन्न होंगे। ऐसे कार्य में तो पिताजी की मंजूरी जरूर ही मिल जावेगी, क्योंकि पिताजी स्वयं ही ऐसी मुनिदशा की भावना भाते हैं, फिर हमें मुनिदशा लेने में क्यों रोकेंगे? —ऐसा कहकर वे दीक्षित हो गये।

राजा श्रीकंठ : वाह! धन्य है उनके वैराग्य को!! मेरी भी यही भावना है— **अपूर्व अवसर ऐसा कब मेरे आयेगा ?**

(गीत गाते हैं और अंदर से बाजे बजते हैं। थोड़ी-थोड़ी देर में आवाज आती है। पहले धीरे से, बाद में जोर से।)

राजा श्रीकंठ : अरे! यह आवाज कहाँ से आ रही है?

विद्याधर : महाराज! आज से अष्टाह्निका पर्व प्रारंभ हो गया है, इसलिए देवों के विमान नंदीश्वर द्वीप में महोत्सव मनाने जा रहे हैं। *(वाद्ययंत्र बज रहे हैं। थोड़ी देर में एक विमान ऊपर आकाशमार्ग से निकलता है। श्रीकंठ राजा आकाश की ओर देख रहे हैं।)*

राजा श्रीकंठ : (ऊपर देखकर) अरे! यह तो मेरे बड़े भाई हैं! मेरे बड़े भाई! वाह-वाह!! *(थोड़ी देर के लिए राजा निःस्तब्ध हो जाते हैं, पश्चात् विचारमग्न हो जाते हैं।)*

दीवानजी : क्या हुआ महाराज! कौन हैं? आपके भाई।

राजा श्रीकंठ : देखो भाई! इन देवों के विमानों को देखकर मुझे जातिस्मरण हो गया है। इस विमान में बैठकर जो गये हैं, वे इन्द्र ही मेरे पूर्वभव मे बड़े भाई थे। उनके ही सत्संग से मुझे जैनधर्म प्राप्त हुआ था। उनका हम पर असीम उपकार है। अहो! वे नंदीश्वरद्वीप में प्रभुभक्ति करने जा रहे हैं। चलो! हम भी नंदीश्वरद्वीप में प्रभुभक्ति करेंगे। सेनापति! नंदीश्वरद्वीप जाने के लिए विमान तैयार करो, पूजन-सामग्री भी तैयार करके लाओ।

सेनापति : जैसी आज्ञा महाराज! *(थोड़ी देर बाद पूजन-सामग्री लेकर आते हैं।)*

सेनापति : स्वामी! सब तैयार है। *(वाद्ययंत्र बजते हैं। धीरे-धीरे गाते-बजाते हुये चलते हैं,* २-३ बार गाते-गाते मंच पर आते हैं))

हिलमिल कर सब भक्तो चलो नंदीश्वर जिनधाम में।

(यह गीत पेज नं. ३७ पर पूरा दिया है।)

राजा श्रीकंठ : लवण समुद्र से निकलकर दूसरे धातकीखण्ड द्वीप में आ गये। अब हम जम्बूद्वीप के बाहर आ गये।

(भजन गाते-गाते फिर अंदर जाते, पुनः बाहर आ जाते।)

राजा श्रीकंठ : अब हम कालोदधि समुद्र से निकलकर तीसरे पुष्करद्वीप में आ गये।

(यहाँ पर्दे पर नंदीश्वर को बहुत दूर ऊँचाई पर दिखाना है, बीच में मानुषोत्तर पर्वत की रचना दिखाना है। संवाद का यह मुख्य और महत्त्वपूर्ण प्रसंग है।)

राजा श्रीकंठ : अरे! मैंने यह बात कई बार सुनी थी, परन्तु भक्ति के वश होकर मैं यह बात भूल ही गया था। अरे! देखो तो

मनुष्य जन्म की पराधीनता!! देह धारण करने में कितनी पराधीनता है, सीमित क्षेत्र से आगे नहीं जा सकते। जिसप्रकार जेल का कैदी जेल के बाहर नहीं जा सकता, उसीप्रकार भव-भ्रमण की जेल में पड़ा हुआ यह जीव ढ़ाई द्वीप के बाहर नहीं जा सकता। अरे! अब तो शीघ्र ही ऐसी भव-भ्रमण की जेल से छूटने का प्रयत्न करूँगा, जिससे यह देह ही धारण न करना पड़े।

दीवानजी : महाराज! नंदीश्वर तो नहीं जा सकते। अब अपने नगर की ओर प्रस्थान करें।

राजा श्रीकंठ : नहीं! नहीं!! अब यह पराधीन संसार हमारे स्वप्न में भी नहीं आयेगा। अब चैतन्यस्वभाव के अवलंबन से भव-भ्रमण के कारण को सर्वथा छोड़कर मुक्ति प्राप्त करूँगा अर्थात् इस ढ़ाई द्वीप की जेल से बाहर निकलकर सिद्ध लोक को प्राप्त करूँगा। यह मानुषोत्तर पर्वत मुझे सिद्ध लोक में जाने से नहीं रोक सकेगा।

दीवानजी : तो क्या हमारे साथ नहीं चलेंगे?

राजा श्रीकंठ : नहीं भाई! अब मैं यहीं मुनिदशा अंगीकार करके मोक्ष की साधना करके अपनी आत्मा को, इस भव-भ्रमण से मुक्त करूँगा।

भंडारीजी : अहो! धन्य है आपकी भावना! महाराज आप हमें छोड़कर नहीं जाइयेगा। आप जिस मार्ग पर जा रहे हैं, उसी मार्ग पर हम भी चल कर मोक्ष की साधना करके अपनी आत्मा को इस भव-भ्रमण से छुड़ावेंगे।

राजा श्रीकंठ : वाह भाई! तुम्हारी भी उत्तम भावना है। चलो, पास में ही जो मुनिवर विराजमान हैं, उनके पास जाकर मुनिदशा धारण करेंगे। *(मुनिराज के पास चले जाते हैं।)*

> जो प्राणी को धर्म के मार्ग में लगाता है, वही परममित्र है। दूसरी ओर, जो जीव को भोग-सामग्री में प्रेरित करता है, वही परमशत्रु है, अस्पृश्य है। **– अध्यात्मयोगी राम, पेज 38.**

वीर वरांगकुमार का वैराग्य

भगवान श्री नेमिनाथ प्रभु के समय की बात है। उत्तमपुरी नाम की नगरी में धर्मसेन राजा तथा गुणवती रानी रहती थी, उनका पुत्र था वरांगकुमार। वे श्री नेमिनाथ तीर्थंकर तथा महाराज श्रीकृष्ण के समकालीन थे। जयसिंहनंदि नाम के मुनिराज ने (वीर निर्वाण की १२वीं सदी में) वरांग चरित्र की रचना की है, उसमें से वैराग्यांश का दोहन कर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

वरांगकुमार के जीवन का घटनाचक्र बड़ा विचित्र है। जवान होने पर धर्मसेन महाराज ने वरांगकुमार को युवराज पद दिया, इस बात से नाराज होकर उसकी सौतेली माता और उसका पुत्र सुषेणकुमार, दुष्ट मंत्री के साथ मिलकर राजकुमार वरांग को मार डालने की कोशिश करने लगे। उसे दुष्ट घोड़े के ऊपर बैठाकर कुएँ में गिराया, वह वहाँ से जिस-तिस प्रकार बचकर निकला, तब फिर वाघ को उसके पीछे लगाया; लेकिन पुण्ययोग से हाथी की सहायता के द्वारा वह उससे भी बच गया। फिर अजगर का उपद्रव हुआ, वहाँ एक देवी ने उसे बचाया और उसके शीलव्रत से प्रसन्न होकर उसकी वह भक्त बन गई।

उसके बाद एक भील बलिदान (बलि देने) के लिए उसे पकड़ कर ले गया, लेकिन वरांगकुमार ने भील-पुत्र के साँप का जहर उतारा, तब उसने भी उसे छोड़ दिया। उसके बाद सागरबुद्धि सेठ की वणसार में रहकर उसने सेठ को लुटेरों से बचाया और सुभट के रूप में सेठ ने उसे पुत्र के समान रखा। इसप्रकार सागर सेठ उसका पालक पिता बना।

एकबार मथुरा के राजा ने ललितपुर के ऊपर चढ़ाई की, तब बहादुर वरांग ने उसको पराजित कर ललितपुर की रक्षा की। इससे ललितपुर के राजा ने उसे आधा राज्य दे दिया तथा अपनी राजकन्या से उसका विवाह कर दिया – इसप्रकार धर्मात्मा वरांगकुमार ने अनेक उपद्रवों के बाद भी पुण्ययोग से पुनः राजपद प्राप्त किया।

यहाँ उत्तमपुर में उसका भाई सुषेणकुमार राज्य संभाल रहा था, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। बकुलनरेश ने उसके ऊपर आक्रमण किया, तब उसने ललितपुर की सहायता माँगी। वहाँ से वरांगकुमार आया और दुश्मन को दाँत खट्टेकर भगा दिया। नगरवासियों ने अपने प्रिय राजा वरांगकुमार का नगर में भव्य स्वागत किया। वरांगकुमार ने सबको क्षमा करके एक नये राज्य की स्थापना की, परिजन तथा पुरजनों को धर्मोपदेश दिया, जिनबिम्ब-प्रतिष्ठा कराई, नास्तिक मंत्रियों को जैनधर्म का स्वरूप समझाया और प्रजा का ज्ञान बढ़ाने एवं उत्तम संस्कार देने के लिए तत्त्व तथा पुराणों का उपदेश दिया। वरांगकुमार को सुगात्र नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

श्री नेमिनाथ प्रभु के गणधर वरदत्त मुनि, केवलज्ञान प्राप्त होने पर एकबार उत्तमपुरी नगरी में पधारे, तभी वैरागी वरांगकुमार ने उनका धर्मोपदेश सुना। वे युवराज थे और संसार की अनेक मुसीबतों से पुण्ययोग के कारण पार हुए थे। उन्होंने राज्य के बीच रहकर धर्मपालन पूर्वक अनेक मंगल कार्य किये थे। एक दिन आकाश में तारा टूटते हुए देखकर वरांग राजा का चित्त संसार से विरक्त हुआ और वे दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गये। प्रथम तो उन्होंने जिन-पूजन का महान उत्सव किया तथा भावना भायी कि जैनधर्म जयवंत वर्तो ! अर्थात् अर्हंतदेव के शासन में अनुरक्त चार संघ सदा जयवंत रहें। जिनालय और जिनवाणी की अतिशय वृद्धि हो। जनता हमेशा आनंदमय उत्सव मनाती रहे और धर्म के पालनपूर्वक न्यायमार्ग पर चलती रहे। धर्म में पाखण्ड न हो। गुणीजनों का सर्वत्र गुणगान होता रहे। प्रजा में से मद्य, मांस और मधु आदि सात व्यसनों के महापाप का समूल नाश हो। उन्होंने अपनी रानियों को भी तत्त्व का उपदेश देकर सम्यक्त्व और अणुव्रतों की शिक्षा दी थी।

आज भी उन्होंने राज्यसभा में प्रजाजनों को जैनधर्म के पालन का सुन्दर उपदेश दिया।

संसार को पार करनेवाली ऐसी जिनभक्ति उसके अंतर में अतिशय उल्लसित होती थी। उनके आंगन में हमेशा विद्वान-धर्मात्मा-सत्पात्रों का सम्मान होता था। पर्व के दिनों में वे संयम का पालन करते थे और धर्म को ही सकल सिद्धिदायक समझते थे। अत: धर्म, अर्थ और काम के बीच में भी वह मोक्षसाधना भूले नहीं थे, गृहस्थ जीवन में भी उनकी आत्मसाधना चल रही थी। सचमुच धन्य था उनका गृहस्थ जीवन !

सन्मार्ग दर्शक राजा वरांग

धर्मात्मा वरांग, राज्यसभा में भी बारम्बार धर्म चर्चा सुनाकर प्रजा को सन्मार्ग दिखाते थे।

एकबार हिंसक-यज्ञ में दोष बताते हुए उन्होंने कहा–

"यज्ञ में होम करने के लिए आये पशु यदि स्वर्ग में जाते होवें तो फिर सबसे पहले वे यज्ञकर्त्ता पुरुष अपने पुत्रादि सगे-संबंधियों को यज्ञ में होम करके उनको ही स्वर्ग में क्यों नहीं भेजते ?

यदि यज्ञादि के बहाने मूक प्राणियों की हिंसा करनेवाले और मांस भक्षण करनेवाले भी स्वर्ग में जायेंगे तो फिर नरक में कौन जायेगा ? अरे रे..... जिसमें जीवदया नहीं है, वह धर्म कैसा ? और वे वेद-शास्त्र कैसे ?"

इस प्रकार उन्होंने उपदेश देकर प्रजा को सन्मार्ग दिखाया। वरांग राजा का युक्तिपूर्ण धर्मोपदेश सुनकर विद्वानों, मंत्रियों, सेनापति, श्रेष्ठिजनों और उनकी प्रजाजनों को बहुत प्रसन्नता हुई और तत्त्वज्ञान पूर्वक उन्होंने मिथ्या मार्ग का सेवन छोड़कर परम हितकारी जैनधर्म की शरण ली तथा सदाचार में तत्पर हुए।

इस प्रकार प्रजा में सर्वत्र आध्यात्मिक शांति का वातावरण फैल गया। एक राजा धर्मप्रेमी हो तो प्रजा में भी धर्म कैसे फैलता है। इसका स्पष्ट उदाहरण राजा वरांग और उनकी प्रजा को देखकर मिलता है।

विद्वानों और वैरागी राजा वरांग ने राजसभा में जीवादि तत्त्वों का स्वरूप भी स्पष्ट समझाया –

देह से भिन्न उपयोग स्वरूप जीव है, वह नये-नये रूप में परिणमित होने पर भी जीवत्वरूप में ही नित्य रहने वाला है, उसका कभी नाश नहीं होता।

वह जीव अपने ज्ञानमय भावों का कर्त्ता-भोक्ता है अथवा राग-द्वेष, हर्ष-शोक क्रोधादि भावों को करता है औरं जिस भाव को करता है, उसके फल को भी वह भोगता है।

जीव यदि ज्ञानमय वीतराग भाव को करे तो उसके फल में मोक्षसुख प्राप्त करता है। शुभ रागादि भाव करे तो उसके फल में स्वर्ग प्राप्त करता है तथा अशुभ पापभावों को करे तो उसके फल में नरकादि गति को प्राप्त करता है। शुभाशुभ भाव से संसार का भ्रमण होता है और उससे रहित शुद्ध ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भाव से आत्मा मोक्षसुख को प्राप्त करता है।

उस मोक्ष का उपाय यह है कि अपनी आत्मा को देहादि सब पर-पदार्थों से भिन्न, शुद्ध चैतन्यस्वरूप जानना एवं अनुभव में लेना।

ऐसा शुद्ध आत्मानुभव, वही 'धर्म' अर्थात् मोक्षमार्ग है।

ऐसे जीवादि तत्त्वों तथा मोक्षमार्ग को बतानेवाले सर्वज्ञ जिनेश्वर, वह 'देव' हैं।

उस मार्ग पर चलनेवाले सर्वज्ञता के साधक साधु, वही 'गुरु' हैं।

जो जीव जीवत्वरूप आत्मा तथा देव-गुरु-धर्म को समझे, वही जीव सम्यग्दृष्टि है।

जगत में भिन्न-भिन्न अनंत जीव हैं। प्रत्येक जीव की आत्म-शक्ति (आत्मा का वैभव) अपने-अपने में स्वाधीन है। अपने निज वैभव में से परमात्मपना प्रगट करके प्रत्येक आत्मा स्वयं ही परमात्मा बन सकता है।

उस कार्य को आत्मा स्वयं ही स्वाधीनपने कर सकता है, कोई दूसरा उसका कर्त्ता नहीं हो सकता; क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य – ऐसे त्रि-स्वरूप में एकत्वपने रहता है। यदि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य न हो तो बंध-मोक्ष, सुख-दुःख आदि कुछ नहीं हो सकते। अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का कर्त्ता जीव स्वयं है, ईश्वर या दूसरा कोई उसका कर्त्ता नहीं है।

सर्वज्ञ भगवान ईश्वर (मुक्तात्मा) तो राग-द्वेष से भिन्न अपने ज्ञानानंद स्वभावरूप में रहनेवाले मुक्त जीव हैं। ऐसे सर्वज्ञ भगवान एक नहीं, अनंत हैं। हम भी रागादि से भिन्न शुद्धभाव प्रगट सर्वज्ञ भगवान करके बन सकते हैं।

जीव कषायभावों के द्वारा कर्म से बँधता है और वीतरागभाव के द्वारा बंधन से मुक्त होता है। इसलिए वीतरागता ही मुमुक्षु जीव का कर्त्तव्य है।

वीतरागता का उपदेश देते हुए राजा वरांग आगे कहते हैं –

"जिस भूमि में मीठे आम को बो सकते हैं, उसमें मीठे आम के बदले कोई निंबोली का कड़वावृक्ष बोता हो तो उस मूर्ख को क्या कहना? वैसे ही जो जीव इस मनुष्य पर्याय को कषाय के काम में लगावे तो उसकी मूर्खता का क्या कहना ? मुमुक्षु तो धर्म साधना के द्वारा अपने जीवन में मोक्ष का बीज बोता है।"

अहो ! वैरागी राजा वरांग राजसभा में इस धर्म चर्चा को सुना रहे हैं – कि जैसे कोई उत्तम पुरुष रत्नद्वीप में जाकर भी वहाँ के रत्नों के बदले रेत लेकर आवे तो वह मूर्ख है, वैसे ही इस उत्तम मनुष्य द्वीप में आकर, सारभूत धर्मरत्न सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ग्रहण करना योग्य है, उसके बदले जो जीव विषयों को ग्रहण करके मनुष्य भव को गँवा देता है, वह मूर्ख है। विषयों में लीन प्राणी क्षण भर में विलय को प्राप्त होते हैं, इसलिए जिनदेव द्वारा कहे हुए सम्यक् रत्नत्रय के मार्ग पर चलना ही सुज्ञपुरुषों का कर्तव्य है।

अरे, यह धनादि जड़ सम्पत्ति जीव को क्या सुख दे सकती है ? पुत्र-परिवार जो स्वयं ही अशरण हैं, वे इस जीव को क्या शरण दे सकते हैं और इस विपुल विशाल राज्य के द्वारा परमार्थ की क्या सिद्धि हो सकती है ? ऐसा संयोग तो क्षणभंगुर और पाप को बढ़ानेवाला है। अब इसका मोह छोड़कर परमार्थ साधना में लगना – यही मेरा निश्चय है।

इन्द्रिय-विषयों में कहीं भी सुख तो है नहीं। अरे, इन विषयों के स्वाद के लिए जीव को कितनी आकुलता करनी पड़ती है। ये तृप्ति-दायक नहीं हैं, ये तो दुखदायक ही हैं और इस देह का सौंदर्य ! सनतकुमार चक्रवर्ती का कामदेव के जैसा सुन्दर शरीर (जिसे देखकर देव भी मुग्ध हो जाते थे) भी क्षणभर में सड़ने लगा – ऐसी सुन्दरता से आत्मा को क्या लाभ है ? और यदि कुरूप होवे तो उससे आत्मा को क्या नुकसान है ? देह से भिन्न चैतन्यतत्त्व अपने एकत्व में ही सुन्दरता से सुशोभित होता है। अरे, इस लोक में कषाय के कोलाहल से अब हमारा मन उदास हो गया है। संसार के संयोग भी जीव के साथ सदा एक समान कहाँ रहते हैं ? ये तो वियोग स्वभाववाले ही हैं। जब कोई भी संयोग ध्रुव (स्थिर) नहीं है, तब फिर वे मुझे शरणरूप कैसे हो सकते हैं ?

अरे ! लक्ष्मी-शरीर-सुख-दुख अथवा शत्रु-मित्र कोई भी जीव के साथ ध्रुव नहीं हैं, ध्रुव तो एक उपयोग-आत्मक जीव ही है।

चाहे जितना धन हो, अथवा बहुत स्नेह रखनेवाले माता-पिता-पुत्र-परिवारजन हों; परन्तु जिस समय मृत्यु आती है, उस समय क्या मुझे कोई बचा सकता है ? – नहीं। मेरा उपयोगस्वरूप आत्मा हमेशा सर्व पर्यायों में उपयोगरूप ध्रुव-निश्चल रहने वाला है, वही मुझे शरणभूत है....उसकी ही शरण मुझे जन्म-मरण से बचानेवाली है।

दृढ-निश्चयी वरांग

जिस समय उनके पालक-पिता सागरदत्त सेठ उन्हें दीक्षा लेने के लिए रोकने का प्रयत्न करते हैं, उस समय वैरागी वरांग युक्तिपूर्वक उनको समझाते हैं –

''हे पिताजी ! कुटुंब-परिवार या स्नेहीजन मुझे मात्र भोजनादि साधारण कार्यों में ही साथ दे सकते हैं। मृत्यु के समय तो वे सभी व्यर्थ हैं, धर्मकार्य में भी वे साथ नहीं दे सकते, तब इनसे मेरा क्या भला हो सकता है ? वैसे ही वे जिस समय उनके कर्म अनुसार मृत्यु के मार्ग में जायेंगे, उस समय मैं भी उन्हें संभालने या बचाने में समर्थ नहीं हूँ। जीव का सच्चा साथी तो वही है, जो कि धर्ममार्ग में साथ देता है।

जैसे मकान में आग लग जावे, तब समझदार मनुष्य बाहर भागने का प्रयत्न करता है, परन्तु जो उसका शत्रु होता है वह उसे पकड़कर आग में फैंकता है। वैसे ही, मोह की ज्वाला में धधकता यह संसार है। इस संसार दुःख की अग्निज्वाला से मैं बाहर निकलना चाह रहा हूँ, तो हे पिताजी ! किसी शत्रु के समान आप मुझे फिर से उस अग्निज्वाला में मत फैंकिये अर्थात् घर में रहने के लिए मत कहिये।

इसी प्रकार लहरों से उछलते भीषण समुद्र के बीच अगाध प्रयत्न पूर्वक तैरता-तैरता कोई पुरुष किनारे आवे और कोई शत्रु धक्का देकर उसे पुनः समुद्र में धकेल देवे। वैसे ही हे पिताजी ! दुर्गति के दुखों से भरे हुए इस घोर संसार-समुद्र में मैं अनादि से डूब रहा हूँ, अतः फिर से आप मुझे इस संसार-समुद्र में मत डालिये।

जैसे कोई मनुष्य शुद्ध-स्वादिष्ट-स्वच्छ अमृत जैसा मिष्टान्न खाता हो और कोई शत्रु उसमें जहर मिला देवे, वैसे ही मैं भी संसार से विरक्त होकर, अन्तर में धर्मरूपी परम अमृत का भोजन ग्रहण करने के लिए तत्पर हुआ हूँ, ऐसे समय आप उसमें राजलक्ष्मी के भोग का विष मिलाने का शत्रुकार्य न करें।

अरे, मोही जीव संसार के पापकार्यों में ही सहायक होते हैं और पवित्र धर्मकार्यों में विघ्न डालते हैं, उनके समान दूसरा शत्रु कौन हो सकता है ?''

वैरागी वरांग अत्यन्त दृढ़तापूर्वक कहते हैं – ''मेरे अन्तर में अभी

शुद्धोपयोग की प्रेरणा जागी है, मेरा मन सर्व जगह से विरक्त हो गया है, अब मैं इस संसार की जेल में नहीं रह सकता..., नहीं रह सकता।

यदि जीवन क्षणभंगुर न होता, इष्टसंयोग हमेशा कायम रहनेवाले होते तो कोई भी उन्हें नहीं छोड़ता; लेकिन जीवन की क्षणभंगुरता और संयोगों की अध्रुवता जानकर, विवेकी पुरुष उसे छोड़कर अपने ध्रुव सिद्धपद को साधने के लिये चले जाते हैं... मैं भी उसी मार्ग पर जाऊँगा...।"

तत्पश्चात् दीक्षा के लिए वन में जाते समय उन वैरागी राजा वरांग के स्त्री-पुत्रादि परिवार के प्रति कैसे उद्गार निकलते हैं, उन्हें पढ़िए; जिन्हें पढ़कर उन वैरागी राजा वरांग के प्रति अपने हृदय में भी बहुमान एवं वात्सल्य के साथ धर्म की भावना जागृत होगी।

जगत स्वभाव और जगत से भिन्न आत्म-स्वभाव, दोनों के चिंतवन पूर्वक वैरागी वरांग राजा का चित्त संसार से उदास होकर मोक्षमार्ग में ही लग गया, इसलिए प्रजा के प्रेम का बंधन तोड़कर मोक्ष को साधने के लिए वे वन में जाने के लिए तैयार हो गये।

उसी समय रानियाँ जब अपने आपको अशरण मानकर रोने लगीं, तब वैरागी वरांग ने उनसे कहा –

"हे देवियो ! तुम यदि दुख से छूटकर सुखी होना चाहती हो तो तुम भी हमारे साथ वैराग्य पथ पर आओ। तुम हमारे साथ दीक्षा लोगी तो यह कोई अपूर्व घटना नहीं होगी; क्योंकि पहले भी अनेक राजा-महाराजाओं के साथ उनकी रानियों ने जिनधर्म के संस्कार तथा तत्त्वज्ञान

प्राप्त करके दीक्षा ली थी। इसलिए तुम भी अपने हित के लिए इस उत्तम मार्ग को अंगीकार करो।"

राजा की बात सुनकर रानियों ने भी विचार किया –

"अरे ! प्राणनाथ के साथ वर्षों तक संसार को बढ़ाने वाले अनेकों भोग भोगे, जब वे ही ये सभी भोगोपभोग छोड़कर आत्मध्यान करने के लिए जंगल में जा रहे हैं, तब हम क्या इन राजभोगों में पड़े रहकर श्रृंगार करते रहेंगे ? नहीं, यह हमें शोभा नहीं देता, हमें भी राजभोगों को छोड़कर उनके ही मार्ग पर चलकर आत्मकल्याण करना चाहिये।"

ऐसा विचार करके वे रानियाँ भी दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गयीं। ऐसे सुअवसर को पाकर उनका भी चित्त प्रसन्न हुआ।

वरांग के पालक-पिता सागरबुद्धि सेठ, जिन्होंने विपत्ति के समय में वरांगकुमार का पुत्र के समान पालन किया था, उन्होंने भी दीक्षा के प्रसंग पर कहा –

"हे कुमार ! मैं भी तुम्हारे साथ दीक्षा लूँगा। राजकार्य और संसार के भोगोपभोगों में तुमने हमारा साथ दिया, अब इस उत्तम धर्मकार्य में यदि मैं तुम्हारा साथ न देकर अलग हो जाऊँ तो मेरे समान अधम कौन होगा ? तुम धर्म-साधना के उत्तम मार्ग पर जा रहे हो, मैं भी उस ही मार्ग पर चलता हूँ।" – इसप्रकार पालक-पिता सागरबुद्धि सेठ भी दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गये।

दीक्षा के लिए जाते समय वरांग राजा ने अपने पुत्रों को अंतिम, आत्म-हितकारी शिक्षा देते हुए कहा –

"लौकिक न्याय-नीति और सज्जनता के उपरान्त, भगवान अरहंत देव के द्वारा उपदिष्ट रत्नत्रय धर्म को कभी नहीं भूलना। शास्त्रज्ञ विद्वानों की सेवा करना, रत्नत्रय से विभूषित सज्जनों का आदर और समागम करना। जब-जब अवसर मिले तब-तब मुनि, आर्यिका, श्रावक और

श्राविका चतुर्विध संघ की आदरपूर्वक सेवा करना और रत्नत्रय के साधन में सदा तत्पर रहना। महा मूल्यवान जैनधर्म मिला है, इसलिए आत्मसाधना के द्वारा अपना जीवन सुशोभित करना।''

वीर वरांग राजा जिस समय पुत्रों को धर्म की शिक्षा दे रहे थे, उसी समय वैराग्य का अनुपम सुख उनकी मुद्रा को तेजस्वी बना रहा था। तत्पश्चात् बारह वैराग्य भावनाओं का चिंतवन करते-करते उन्होंने वन की ओर प्रस्थान किया।

जिस समय वरांगकुमार वैराग्य से वन की ओर जा रहे थे, उन्हें देखने वाले कितने ही जीवों ने मात्र उनकी प्रशंसा की तथा दूसरे जीव जिनकी आत्मा मरी नहीं थी, जिनका आत्मबल दीन नहीं हुआ था, जो आत्महित में जागृत थे और मोक्ष के लिए उत्सुक थे; वे तो वरांग के साथ ही चल दिये।

''ये युवा राजकुमार आत्महित साधने के लिए वन में जा रहे हैं और हम यहीं हाथ जोड़कर विषय-कषाय में पड़े रहेंगे क्या ? नहीं, यह तो संसार से छूटने का सुनहरा अवसर मिला है।''

– ऐसा विचार कर उन्होंने भी उनके ही साथ वैराग्य से वन में जाने का निर्णय किया। उनकी रानियों ने भी अपना जीवन धर्मसाधना में लगाया और पति के पीछे-पीछे वे भी आर्यिका दीक्षा लेने के लिए वन की ओर जाने के लिए तैयार हो गईं।

वैराग्य का ज्वार पूरे जोर पर

महाराज धर्मसेन ने पुत्र वरांग को बहुत स्नेहपूर्वक दीक्षा लेने से रोकने का प्रयत्न किया और मुनिदशा में अनेक उपसर्ग-परिषह का वर्णन करके चारित्र-पालन की कठिनता बताई, तब वरांगकुमार ने विनयपूर्वक परन्तु दृढ़ता से कहा –

''पिताजी ! मुनिपने में जो कठिनता आप बता रहे हैं, वह विषयों के लोलुपी कायरों के लिए कठिन होगी, मोक्षसाधक सिंहवृत्तिवाले जीवों

के लिए वह कठिन नहीं है। उन्हें तो मुनिदशा और चारित्र-पालन, सहज आनंदरूप है, यौवन भी मुझे भोगों में विचलित कर सके – ऐसा नहीं है।

हे पिताजी ! चारित्र दशा जवानी में यदि कठिन है तो फिर वृद्धावस्था में उसका पालन कैसे होगा ? इसलिए मैं तो इसी समय आत्म कल्याण के लिए चारित्र दशा अंगीकार करूँगा। गृहस्थपने के झूठे बंधन को तोड़कर स्वतन्त्रपने अब मैं वन में मुनिमार्ग में विचरण करूँगा, आप मुझे रोकने की व्यर्थ चेष्टा न करें।

मैं वैराग्य के स्वर्णपात्र में दीक्षारूपी अमृतपान करने के लिए तत्पर हुआ हूँ। उसी समय आप विषयों को भोगने के लिए कहेंगे तो वह विषपान करने के समान होगा। मुझे शांति की ऐसी तीव्र प्यास लगी है कि जो चारित्र धर्म रूपी अमृतपान के द्वारा ही शांत हो सकती है। धर्म के प्यासे जीव को शांति का पान करने के लिए जो रोके तो उसके समान और कौन शत्रु होगा ? बाहर का शत्रु तो आक्रमण करके कभी संपत्ति छीन भी ले अथवा देह के अंग का छेदन भी करे और अधिक से अधिक प्राण ले सकता है; परन्तु धर्म के आचरण में जो जीव बाधा करे, वह तो महानिर्दयी है, क्योंकि वह एक भव नहीं, अनेक भव के सुख को पाप की धूल में मिला देता है।

जो जीव को धर्म में सहायक हो, वही सच्चा मित्र है। धर्म के बिना यह लंबी आयु, जवान शरीर या धन-संपत्ति सब किस काम का है ? इसका क्या भरोसा ? क्षणभर में ये सब नष्ट हो जायेंगे।

अरे, सांसारिक भोगों में फँसे हुये गृहस्थ को कैसी-कैसी विपत्ति सहन करनी पड़ती है, वह क्या हम नहीं जानते ?

हे पिताजी ! अब मुझे सौभाग्य से शुद्धोपयोग की प्रेरणा जागी है तो फिर आप ही कहिये कि मुझे राज्य भोगों में आसक्ति कैसे हो सकती है ?”

"बेटा ! ऐसी भरी जवानी में विषय-भोगों को छोड़कर वन में रहना तो बहुत कठिन बात है, वृद्ध हो जाने पर भी हम अभी उन्हें छोड़ नहीं सकते और चारित्रदशा पालन नहीं कर सकते। तब तुम युवावस्था में ही विषयों को किस प्रकार जीत सकोगे ?"

"पिताजी ! विषयों को छोड़ना कायरों के लिए कठिन हो सकता है, शूरवीरों के लिए नहीं। शूरवीर मुमुक्षु तो चैतन्य की एक झंकार (गूँज) मात्र से सर्व संसार के विषयों को छोड़ देते हैं और मोक्ष की साधना में लग जाते हैं।"

वरांग राजा की ऐसी सरस वैराग्य भीनी युक्तिपूर्ण बात सुनकर महाराज निरुत्तर हो गये और उनका चित्त भी वैराग्य धारण करने के लिए तत्पर होने लगा।

पिताजी ने कहा – "हे वत्स ! तुम्हारी बात परम सत्य है, तुम्हारा भाव वास्तव में दृढ़ और अत्यंत विशुद्ध है। किसी को धर्मकार्य में बाधा पहुँचाना – यह तो भव-भवान्तर को बिगाड़ने के समान है। मैंने पुत्र-स्नेह वश जो कुछ कहा, उसे तुम लक्ष्य में न लेकर मुनिदीक्षा अंगीकार करके आनंदपूर्वक मोक्ष के पथ में विचरण करो।"

वरांगकुमार बचपन से ही शांत, विषयों से विरक्त और अन्तर्मुख जीवन जीनेवाले थे। धर्म के प्रति उनका उत्साह प्रसिद्ध था। मंत्री, सेनापति और समस्त नगरजनों से उन्होंने नम्रता से क्षमायाचना पूर्वक विदाई ली।

अन्त में वे अपनी माता के पास विदा लेने गये। माता-पुत्र के धर्म-संस्कारों को समझती थी, अतः उन्होंने गद्गद् होकर कहा –

"बेटा ! मैं क्या बोलूँ ! तुम जिस उत्तम मार्ग में जा रहे हो, उसमें मैं क्या कह सकती हूँ ? बेटा ! तुम अपनी साधना में शीघ्र सफल होओ और सर्वज्ञ परमात्मा बनकर हमें दर्शन दो – यही अभिलाषा है।"

"धन्य माता" – ऐसा कहकर मस्तक झुकाकर वरांगकुमार वहाँ से विदा हुए। वैरागी वरांग को वन में जाते देखकर लोग आश्चर्यचकित हो अनेक प्रकार की बातें करने लगे।

एक मूर्ख मनुष्य कहने लगा – "यह वरांग राजा बालबुद्धि हैं। आश्चर्य है कि ऐसे महान राज-सुखों को छोड़कर स्वर्ग-मोक्ष के सुखों को खोजने वन में जा रहे हैं। स्वर्ग-मोक्ष के सुखों को कौन जानता है ? जिसके लिए यह प्रत्यक्ष मिले इन्द्रिय-सुखों को छोड़कर वन में जा रहे हैं। जिसे देखा नहीं – ऐसे सुख की खातिर मिले हुए सुखों को भी छोड़ दिया। ये दोनों को ही खो देंगे। मोक्षसुख के नाम पर इस भोले जीव को किसी ने भड़का दिया है। जहाँ ये सभी इन्द्रिय सुख उपलब्ध हैं तो फिर दूसरे कौन से सुख को खोजने के लिए ये वन में जा रहे हैं।"

तभी एक बुद्धिमान सज्जन ने उसे जवाब देते हुए कहा –

"अरे मूढ़ ! ये वरांगकुमार मूर्ख नहीं, मूर्ख तो तू है। तुझे स्वर्ग-मोक्षसुख की खबर नहीं है, इसलिए तू विषयसुखों में आसक्त है, इसी कारण तू इसप्रकार बकवास कर रहा है। विषयों से पार तुझे चैतन्यसुख की खबर नहीं है। ये वरांगकुमार तो इन्द्रिय विषयों से पार ऐसे अतीन्द्रिय-सुख का अनुभव करते हैं। इन्होंने मोक्ष-सुख का स्वाद साक्षात् चखा है, उसी सुख की पूर्णता को साधने के लिए इन इन्द्रिय-सुखों को छोड़कर वन में जा रहे हैं। इन्द्रिय-सुख वह वास्तविक सुख नहीं, अपितु दुःख ही है। सच्चा सुख धर्मसाधना के द्वारा ही प्राप्त होता है। इस विश्वविख्यात सिद्धान्त को क्या तुम नहीं जानते ? लो सुनो –

अत्यन्त, आत्मोत्पन्न, विषयातीत, अनूप, अनंत का।
विच्छेदहीन है सुख अहो ! शुद्धोपयोग प्रसिद्ध का॥

ये वरांगकुमार इन्द्रिय-सुख को छोड़कर इन्द्र पद के लिए नहीं जा रहे हैं। वे तो उन्हें प्राप्त ही हैं, परन्तु वे तो उससे भी पार अतीन्द्रिय मोक्ष-

सुख साधने के लिए जा रहे हैं। पहले भी तीर्थंकर भगवंतों ने राज्यभोगों को छोड़कर उस मोक्ष-सुख को साधा है। श्री नेमिनाथ तीर्थंकर ने भी आत्मा में से ही अतीन्द्रिय-सुख को साधा है। अतीन्द्रिय-सुख ही सच्चा सुख है और वह सुख आत्मा में से ही आता है, विषयों में से नहीं।''

बुद्धिमान धर्मात्मा के पास से ऐसी सरस बात सुनकर वह मूर्ख फिर पछताता हुआ कहने लगा –

''अरे, मैंने वरांगकुमार को समझे बिना ही उनकी निंदा की, मुझे धिक्कार है ! अच्छा हुआ कि तुमने सच्ची बात समझा दी। अब मैं भी उस अतीन्द्रिय-सुख को साधने के लिए राजा वरांग के साथ उनके मार्ग पर जाऊँगा''

ऐसा कहकर वह भी वैराग्यपूर्वक वरांगकुमार के साथ चला गया। इसप्रकार वरांग कुमार के निमित्त से अनेक भ्रमणा में पड़े हुए जीव भी चैतन्य सुख की श्रद्धा करके विषयों से विरक्त हुये और वरांग राजा के साथ वन में पहुँचे। राजा वरांग के राग-द्वेष का बंधन तो टूट ही गया था। सुयोग से ठीक इसी समय पास में ही मणिकान्त पर्वत पर वरदत्त केवली भगवन्त विराजमान थे। पहले वे श्री नेमिनाथ तीर्थंकर भगवान के मुख्य गणधर थे, फिर वे सर्वज्ञ अरिहंत हुए और देश-देश में विचरण करके सभी भव्यजीवों को धर्मोपदेश देने लगे।

वैराग्य के धनी ऐसे परमात्मा के दर्शन होने पर वैरागी वरांग के हर्ष का पार न रहा। भक्तिपूर्वक दर्शन-स्तुति करके उन्होंने कहा –

''हे देव ! इस संसार से थके हुए जीवों को आप ही विश्राम के स्थान हो। हे प्रभो ! धर्म ही आपका शरीर है, केवलज्ञान और केवलदर्शन से आप परिपूर्ण हो, सुख के भंडार हो, आपकी शांतमुद्रा के दर्शन से मेरा मोह शांत हो गया है और अब मैं आपकी चरण-छाया में दिगम्बर जिनदीक्षा लेकर मुनि होना चाहता हूँ। इस संसार भ्रमण से मैं दुखी हो गया

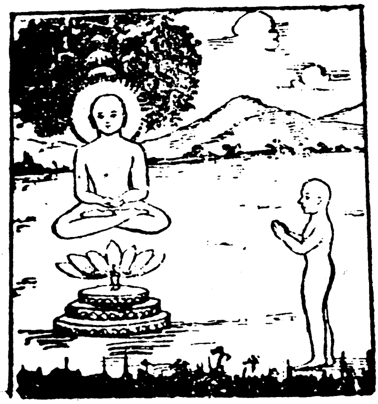

हूँ, इसलिए अब मुझे अपने देश मोक्षपुरी में ले चलो। आपका देश कितना सुन्दर है। जहाँ कभी मृत्यु नहीं होती, कभी जन्म नहीं होता, जहाँ मोह, मद, कर्म की रज भी नहीं है, मात्र शांति ही शांति है ! बस, अब मैं भी इसी देश में – सिद्धपुरी में आकर सदाकाल रहूँगा।''

इस प्रकार प्रार्थना करके उन आत्मज्ञ भव्यात्मा ने केवली प्रभु के चरणों में जिनदीक्षा अंगीकार की। वे वस्त्राभूषण एवं सर्वप्रकार का परिग्रह छोड़ मुनि होकर आत्मध्यान में लीन हो गये। इसी समय उन्हें शुद्धोपयोग सहित चारित्रदशा प्रकट हुई, क्षायिक सम्यक्त्व और मन:पर्ययज्ञान प्रकट हुआ। अब वे रत्नत्रय के सम्राट मोह का साम्राज्य छोड़कर मोक्ष के साम्राज्य को संभाल रहे थे। अब वे शत्रु-मित्र या जीवन-मरण में समभावी थे। आत्मसाधना में उनकी शूरवीरता खिल उठी।

राजा वरांग ने दीक्षा ली, उनके साथ रानियाँ भी दीक्षा लेकर आर्यिका बन गयी थीं। दूसरे कितने ही भव्यजीवों ने उनके साथ दीक्षा ली। जो दीक्षा नहीं ले सकते थे, उन्होंने श्रावक के व्रत तथा सम्यक्त्व को धारण किया।

''अरे इन्होंने इतने महान वैभव छोड़े हैं, तब हमारे पास तो क्या वैभव है ? इस अल्प वैभव को हम क्यों नहीं छोड़ सकते ?''

ऐसा विचार करके साधारण स्थितिवाले अनेक जीवों ने राजा वरांग के साथ ही दीक्षा ले ली। सभी की आँखों में से वैराग्यरस झर रहा था। अपने कल्याण का ऐसा सुअवसर प्राप्त होने पर सभी का चित्त प्रसन्न हो रहा था।

वरांग राजा या वरांगमुनि

सभी को "राजा वरांग" की अपेक्षा नव दीक्षित "वरांग मुनि" अच्छे लग रहे थे। उनका मुनिरूप देखकर सभी को आश्चर्य हुआ। परम भक्तिपूर्वक मुनिराज की वंदना करके नगरजन उदासचित्त नगर में लौट आये। सभी को राजा वरांग के बिना नगरी सूनी-सूनी लगने लगी। कई दिन तक किसी का चित्त व्यापार धंधे या संसार कार्य में नहीं लगा। चारों ओर वैराग्यपूर्वक धर्मचर्चा ही चलती रही।

दूसरी ओर वन में मुनि और आर्यिका हुये सभी धर्मात्मा/भव्यात्मा अपनी-अपनी आत्मसाधना में अत्यन्त जागृत होकर शुद्ध आत्मस्वरूप के ध्यान में तत्पर हुये। मोक्ष-साधना के लिए उनका साहस कोई साधारण न था।

सभी वरांग मुनि आदि नव-दीक्षित होने पर भी मुक्ति के मार्ग से परिचित थे, जिससे मुनि-मार्ग का पालन अतिचारादि दोषों से रहित पूर्णतया योग्य कर रहे थे। संसार के किसी भी पदार्थ के प्रति उनका राग नहीं था। ज्ञायकतत्त्व के चिंतन में उन्हें ऐसा आनंद आता था कि अब कोई भी इन्द्रिय-विषय उनके चित्त को आकर्षित नहीं कर सकता था। थोड़े ही समय में उन्होंने पूर्ण ज्ञानाभ्यास प्राप्त कर लिया था। शुद्ध चारित्र पालन के प्रभाव से उन्हें अनेक अचिन्त्य लब्धियाँ तो प्रकट हो गई थीं........परन्तु अंतर के

महान आनंद निधान के सामने बाहर की किसी भी लब्धियों की ओर उनका लक्ष्य न था। उनका लक्ष्य तो एकमात्र स्वलक्ष्यरूप चैतन्य में ही केन्द्रित था।

तीन लोक को क्षणमात्र में नष्ट-भ्रष्ट करने वाले महा क्रोधमल्ल को उन्होंने परम क्षमाशक्ति के द्वारा जीत लिया था तथा तपरूपी चाबुक के द्वारा दुष्ट इन्द्रियरूपी घोड़े को विषय-वन में जाने से रोक लिया था।

जिसप्रकार भयभीत कछुआ सर्वांग को अपने में संकुचित कर लेता है, उसी प्रकार वे संसार से भयभीत और अस्पर्श-योग में अनुरक्त – ऐसे वरांग मुनिराज ने अपने उपयोग को इन्द्रियों से संकुचित करके अपने में ही अंर्तलीन कर लिया था।

उनका उपयोग अपने में ही लीन होने से उन्हें इस जगत सम्बन्धी कोई भय न था। बाहर में उपसर्ग या परिषह आने पर भी उसकी ओर उनका लक्ष्य नहीं जाता था। वे हमेशा बारह प्रकार की वैराग्य-भावनाओं का चिन्तवन करते थे। वे राज्यावस्था में जिसप्रकार शत्रु-सेना को जीतते थे, वैसे ही अब मुनिदशा में मोहसेना को जीतने के लिये उद्यम कर रहे थे। इसप्रकार बारम्बार शुद्धोपयोग के प्रहार द्वारा उन्होंने क्रोधादि मोहसेना का पराभव किया।

मुनिराज वरांग की जब एक माह आयु शेष रही, तब अपनी दीक्षाभूमि मणिकांत पर्वत पर आकर उन्होंने समाधि धारण की, वह उनके गुरु वरदत्त केवली की भी निर्वाणभूमि थी। भगवान नेमिनाथ तीर्थंकर का भी मोक्षगमन यहीं से हुआ था।

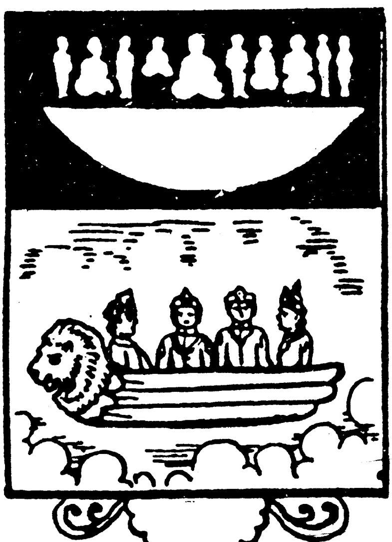

उन सभी को हृदय में विराजमान करके उन्होंने – दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप को अखण्ड रूप से चित्त में धारण किया।

महावैरागी वीतरागी दिगम्बर

वरांग मुनिराज देह त्यागकर सर्वार्थसिद्धि विमान में उत्पन्न हुये। मोक्षपुरी के एकदम पास पहुँच गये। सर्वार्थसिद्धि की आयु पूरी कर अगले भव में वे केवलज्ञान प्रगट करके मोक्षपद को पायेंगे। उन्हें हमारा नमस्कार हो।

(इसप्रकार श्री जयसिंहनंदी द्वारा रचित वरांगचरित्र में से वैराग्य का दोहन पूरा हुआ, उससे आत्मार्थी जीव वैराग्य भाव उत्पन्न करके आत्महित की प्रेरणा लें – यही इसका उद्देश्य है।)

श्री कुंभकर्णदेवाय नमः

श्री कुंभकर्णदेवाय नमः ! क्या ? श्री कुंभकर्णदेवाय नमः

जी हाँ ! हमने कुंभकर्णदेव को नमस्कार किया। क्या तुम्हें आश्चर्य हुआ ? यदि हाँ तो सुनो –

रावण का भाई कुंभकर्ण, यह कोई छह माह तक सोता नहीं रहता था और जब यह सोता था, तब जागने के लिए छाती पर हाथी नहीं चलवाना पड़ता था। जागकर ये कोई भैंसा या भैंसे का बच्चा नहीं खा जाता था ?

अरे ! फिर आपने किस कुंभकर्णदेव को नमस्कार किया है, क्या ये कोई भगवान हैं ?

ये कुंभकर्ण तो वीतराग जैनमार्ग के उपासक एक अहिंसक धर्मात्मा थे और उसी भव में मुनि होकर, केवलज्ञान प्राप्त करके, मध्यप्रदेश में बड़वानी चूलगिरी से मोक्ष पधारे हैं। हम इन्हें सिद्ध भगवान समान पूजते हैं। इसलिए लिखा है कि **"श्री कुंभकर्णदेवाय नमः"** **बोलो ! कुंभकर्ण भगवान की जय !!**

भगवान देशभूषण और कुलभूषण

(दो वैरागी राजकुमारों की कहानी)

अयोध्यानगरी में श्री देशभूषण और कुलभूषण – दो केवली भगवान पधारे थे.... रामचन्द्रजी आदि उनका उपदेश सुनने गये थे.... तब भरत ने दीक्षा ली थी और हाथी ने श्रावक व्रत अंगीकार किये थे, उन देशभूषण-कुलभूषण के पूर्वभव की संक्षिप्त कहानी हम भाग-२ में पढ़ चुके हैं। अब उन मुनि भगवंतों के जन्म से लेकर मोक्ष तक की कहानी पढ़िये।

महापुरुष रामचन्द्रजी के समय की बात है। सिद्धार्थनगरी के राजा क्षेमंकर थे और उनकी रानी का नाम विमलादेवी था। उनके दो पुत्र थे – एक देशभूषण और दूसरा कुलभूषण। दोनों भाइयों को एक-दूसरे के प्रति अपार प्रेम था। मात्र इसी भव में नहीं, बल्कि पूर्व में अनेक भवों से वे एक-दूसरे के भाई हो रहे थे। दोनों भाई आत्मा को जानने वाले थे और पूर्वभव के संस्कारी थे।

राजा ने बाल्यावस्था से ही दोनों को विद्याभ्यास के लिए किसी अन्य नगर भेज दिया था। पन्द्रह वर्ष तक दोनों भाई विद्याभ्यास में इतने मस्त थे कि विद्यागुरु के अलावा किसी और को जानते तक नहीं थे। विद्याभ्यास पूरा करके जिस समय दोनों युवा राजकुमार घर आये, उस समय राजा ने नगरी का शृंगार करके उनका भव्य स्वागत किया और उनके विवाह के लिए राजकन्याओं को पसंद करने की तैयारी की।

दोनों भाइयों की स्वागत यात्रा नगरी में घूमती-घूमती राजमहल के पास आयी, वहाँ झरोखे में एक अतिसुन्दर राजकन्या प्रसन्नचित्त से खड़ी थी। उसका अद्भुत रूप देखकर दोनों राजकुमार उसके ऊपर मुग्ध हो गये। वह राजकन्या भी एकटक उनको देख रही थी, दोनों का रूप निहारती-निहारती वह बहुत प्रसन्न हो रही थी।

अब, एक साथ उन देशभूषण और कुलभूषण दोनों भाइयों को

ऐसा लगा कि यह राजकन्या मेरे लिए ही है.... वह मेरे ऊपर प्रसन्न हो रही है, मैं ही इससे विवाह करूँगा; इसप्रकार दोनों भाई इसी राजकन्या के ऊपर ही नजर रखकर उसे राग से निहारने लगे – यह देखकर दोनों को एक-दूसरे पर द्वेष आया कि यदि मेरा भाई इस कन्या के ऊपर नजर रखेगा तो मैं उसे मारकर इस राजकन्या से विवाह करूँगा। ऐसा मन ही मन में वे एक-दूसरे को मारकर भी उस राजकन्या के साथ विवाह करने की सोच रहे थे। दोनों का चित्त एक ही राजकुमारी में एकदम आसक्त था, इस कारण वे एक-दूसरे से कहने लगे –

"इस राजकुमारी के साथ मैं विवाह करूँगा, तुम नहीं।"

इसप्रकार मैं-मैं.... तू-तू करते-करते दोनों भाई हाथी के ऊपर बैठे-बैठे वाद-विवाद करने लगे। कन्या के मोहवश दोनों भाई एक-दूसरे के प्रति प्रेम भूल गये और द्वेषपूर्ण वर्ताव करने लगे। कन्या की खातिर एक-दूसरे से लड़ने के लिए तैयार हो गये।

अरे विषयासक्ति ! भाई-भाई के स्नेह को भी तोड़ देती है। अरे चेतो ! चार-चार भव से परमस्नेह रखनेवाले दोनों भाई इस समय विषयासक्तिवश एक-दूसरे को मारने के लिए भी तैयार हो गये हैं।

हृदय परिवर्तन –

इतने में कुछ शब्द उनके कान में पड़ते ही दोनों भाई चौंक गये..., जैसे बिजली ही उनके ऊपर पड़ गई हो, अरे रे .... वे दोनों स्तब्ध हो कैसे गये ?.... क्या शब्द थे वे ?

दोनों राजकुमारों को लड़ाई करने की तैयारी करते देखा तथा दोनों की नजर भी राजकुमारी की ओर लगी है – यह देखकर, उनके साथ चल रहे बुद्धिमान मंत्री परिस्थिति को समझ गये कि ये दोनों राजकुमारी के लिए लड़ रहे हैं.... उन्होंने कहा –

"देखो, राजकुमारो ! सामने राजमहल के झरोखे में 'तुम्हारी

बहिन' खड़ी है, बहुत वर्षों बाद तुम्हें पहली बार देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो रही है कि अहा ! कितने अच्छे लग रहे हैं मेरे भाई ! अतः टकटकी लगाकर तुम्हें निहार रही है। तुम विद्याभ्यास करने गये थे, उसके बाद इसका जन्म हुआ था, यह तुम्हारी बहिन तुम्हें पहली बार देखकर कितनी खुश है ! तुम भी उसे पहली बार देख रहे हो....।"

"अरे ! इस झरोखे में खड़ी-खड़ी जो हमारे सामने हँस रही है, वह राजकुमारी कोई और नहीं, हमारी ही सगी बहिन है।"

– ऐसा जानकर दोनों भाइयों के मन में जबरदस्त धक्का लगा। लज्जा से वे वहीं ठहर गये। वे सोचने लगे –

"अरे रे ! यह तो हमारी छोटी बहिन है ! हमने इसे कभी देखा नहीं, जिससे समझ नहीं सके, अज्ञानता के कारण हम अपनी बहिन के ऊपर ही विकार से मोहित हुए और एक-दूसरे को मारने का विचार करने लगे। अरे, विषयांध होकर हम भाई-भाई के स्नेह को ही भूल गये; हाय रे ! हमें यह दुष्ट विचार क्यों आया ?

अरे रे ! ऐसे संसार में क्या रहना ! जहाँ एक भव की स्त्री दूसरे भव में माता या बहिन हो, एक भव की बहिन दूसरे भव में स्त्री आदि हो। अब इस संसार से विराम लेना चाहिये। अनेक दुःखों से भरा हुआ यह संसार, जिसमें दुष्ट मोह, जीव को अनेक प्रकार से नाच नचाता है। हमें धिक्कार है कि हमने मोह के वश होकर अपनी बहिन के ऊपर विकार किया। अरे ! अब, माता-पिता को हम क्या मुँह दिखायेंगे।"

– ऐसा विचार करके उन्हें राजमहल जाने में अत्यन्त शर्म महसूस हुई। इसप्रकार संसार को असार समझकर दोनों भाई अत्यन्त विरक्त हुए और वहाँ से लौटकर विरक्त होकर मुनि दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए, उसी समय पुत्रवियोग से व्याकुल माता ने पुत्रों को रोकने हेतु बहुत प्रयत्न किया। उनके पिता दोनों पुत्रों के विरह में आहार को त्याग करके, प्राण छोड़कर भवनवासी देव में गरुडेन्द्र हुए।

उसकी बहिन ने भी मुनिपने में बहुत कष्ट बताते हुए कहा –

"हे बन्धुओ ! वहाँ कोई माता-पिता या परिवार नहीं है, कुटुंब के बिना वन में अकेले किसप्रकार रहोगे ?"

तब वैरागी कुमारों ने कहा – "हे माता ! हे बहन ! मुनिदशा में तो महा-आनंद है। वहाँ कोई आत्मा अकेली नहीं है, उनका महान चैतन्य परिवार उनके साथ ही है।" कहा भी है –

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननि शान्तिश्चिरं गेहिनी,
सत्यं सुनुरयं दया च भगिनि भ्राता मनः संयमः।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं,
एते यस्य कुटुंबिनो वद सखे ! कस्मात् भयं योगिनः॥

धैर्य जिसका पिता है, क्षमा जिसकी माता है, अत्यन्त शांति जिसकी गृहिणी है, सत्य जिसका पुत्र है, दया जिसकी बहिन है और संयम जिसका भाई है – ऐसा उत्तम वीतरागी परिवार मुनियों को जंगल में आनंद देता है। फिर पृथ्वी जिसकी शय्या है, आकाश जिसके वस्त्र हैं, ज्ञानामृत जिसका भोजन है – ऐसे योगी को कैसा डर? भय तो इस मोहमयी संसार में है, मोक्ष के साधकों को भय कैसा ?"

– ऐसा कहकर देशभूषण-कुलभूषण दोनों कुमार वन में चल गये और दीक्षा लेकर मुनि हो गये। उनकी बहिन आर्यिका हो गयी। दोनों राजकुमार मुनि होकर चैतन्य के अनंत गुण परिवार के साथ अत्यन्त आनंद के साथ क्रीड़ा करने लगे। शुद्धोपयोग के द्वारा निजगुण के स्वपरिवार के साथ भाव-विभोर होते हुए मोक्ष की साधना करने लगे।

राम-लक्ष्मण द्वारा मुनिराजों का उपसर्ग-निवारण

जिससमय राम-लक्ष्मण और सीता वंशधर पर्वत के पास आये थे, उसी समय देशभूषण-कुलभूषण मुनिवर उस पर्वत के ऊपर ध्यानमग्न

विराजमान थे, उस समय उनके पूर्वभव का वैरी दुष्ट अग्निप्रभदेव तीन दिन से उनके ऊपर दैवी मायाजाल के द्वारा घोर उपसर्ग कर रहा था।

श्री केवली भगवान की वाणी में ऐसा आया था कि मुनिसुव्रत प्रभु के बाद उनके शासन में देशभूषण-कुलभूषण केवलज्ञानी होंगे – ऐसा सुनकर पूर्व की द्वेषबुद्धि से प्रेरित होकर दुष्ट अग्निप्रभदेव ने विचार किया कि मैं उनके ऊपर उपसर्ग करूँगा, तब केवली भगवान का वचन मिथ्या हो जायेगा। ऐसी मिथ्याबुद्धि के द्वारा वह देशभूषण और कुलभूषण मुनिराजों के ऊपर उपसर्ग करने लगा।

विक्रिया के द्वारा सर्प और चींटी बनकर उनके शरीर से लिपट जाता, ऐसी गर्जना करता कि पर्वत कांप उठता.... क्रूर पशुओं का रूप धारण कर मुनियों को खा जाने की चेष्टा करता....रोज रात होने के बाद उन ध्यानस्थ मुनियों के ऊपर उपसर्ग करता। उन उपसर्गों की भयानक आवाज दस-दस गाँव के लोगों तक सुनाई देती थी। वह आवाज सुनकर नगरजन भय से काँप उठते....वहाँ का राजा भी कोई उपाय न कर सका था, इसलिए भय के कारण राजा-प्रजा सभी रात को वह नगरी छोड़कर दूर चले जाते।

इसप्रकार अत्यन्त भयभीत नगरजनों को देखकर राम ने उनसे इस भय का कारण पूछा, तब नगरजनों ने कहा–

"यहाँ रोज रात्रि के समय कोई दुष्ट देव भयंकर उपसर्ग करता है, उसकी अत्यन्त कर्कश आवाज से यहाँ के सभी जन भयभीत हैं। पता ही नहीं चलता कि पर्वत के ऊपर रोज रात्रि को क्या होता है ? तब श्री राम उस पर्वत पर जाने को उद्यत हुए, तब नगरजनों ने कहा – वहाँ बहुत डर है, जिसे तुम बरदाश्त नहीं सकते, इसलिए तुम वहाँ नहीं जाओ, तुम भी हमारे साथ सुरक्षित स्थान में चलो।"

ऐसा सुनकर सीता भी भयभीत होकर कहने लगी –

"हे देव ! आप वहाँ मत जाइये। चलो, हम भी इन लोगों के साथ निर्भय स्थान में जाकर रात्रि बितायेंगे।"

उस समय राम ने हँसकर कहा –

"हे जानकी ! तुम तो बहुत कमजोर हो। तुम्हें लोगों के साथ जाना हो तो तुम जाओ। मैं तो रात को इसी पर्वत के ऊपर रहूँगा और वहाँ यह सब क्या हो रहा है, उसे देखूँगा। मुझे कोई डर नहीं है।

तब सीता ने कहा – "हे नाथ ! तुम्हारा हठ दुर्निवार है। तुम जाओगे तो मैं भी साथ ही आऊँगी। आप और लक्ष्मण जैसे वीर हमारे साथ हों, फिर मुझे भी भय कैसा ? – ऐसा कहकर वह भी राम-लक्ष्मण के साथ ही वंशधर पर्वत की ओर जाने लगी।

लोगों ने उन्हें न जाने के लिए बहुत समझाया, परन्तु राम-लक्ष्मण निर्भयतापूर्वक पर्वत की ओर चले गये, सीता भी उनके साथ गयी। सीता भय से कहीं पर्वत के ऊपर से गिर न जाये – ऐसा विचार कर राम आगे और लक्ष्मण पीछे, बीच में सीता – इसप्रकार दोनों भाई बहुत सावधानी से सीता को पहाड़ के शिखर के ऊपर तक ले गये।

पहाड़ के ऊपर जाकर उन्होंने अद्‌भुत आश्चर्यकारी दृश्य देखा। अहो ! अत्यन्त सुकोमल दो युवा मुनिराज खड़े-खड़े देह से भिन्न आत्मा का ध्यान कर रहे हैं। नदी के समान गंभीर उनकी शांत मुद्रा है – ऐसे वीतरागी मुनि भगवन्तों को देखकर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई और भक्ति-भाव से स्तुति की कि पर्वत के ऊपर रहनेवाले पशु भी सुनकर मोहित हो गये और वहाँ आकर शांति से बैठ गये। उसके बाद राम-लक्ष्मण-सीता वहीं रुक गये।

फिर रात हुई....और असुर उपद्रव करने वहाँ पहुँचा, बड़ा भयंकर सर्प का रूप लेकर जीवों को ललकारते हुए वह उन मुनिराजों के शरीर से लिपट गया। राम-लक्ष्मण – इस उपद्रव को असुर की माया

समझकर उस पर अतिशय क्रोधित हुए। सीता तो उसका भयंकर रूप देखकर भय से राम से लिपट गयी.... तब राम ने कहा –

"हे देवी ! तुम भय मत करो।"

इसप्रकार सीता को धीरज बँधाकर दोनों भाइयों ने मुनियों के शरीर से सर्प को दूर किया। बलदेव और वासुदेव के पुण्य के प्रताप से असुरदेवों की विक्रिया का जोर नहीं चला। उसने अपनी विक्रियाजनित माया समेट ली। इसप्रकार उपसर्ग दूर हुआ समझकर राम-लक्ष्मण-सीता आनंद सहित मुनिराजों की स्तुति करने लगे –

"हे देव ! आप तो संसार से उदास मोक्ष के साधक हो, आप मंगल हो, आपकी शरण लेकर भव्यजीवों का भवरूपी उपसर्ग दूर हो जाता है और आनंदमय मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है। अहो, आप जिनमार्ग के प्रकाशक हो और सम्यक्त्वादि तीन उत्तम रत्नों के द्वारा सुशोभित हो रहे हो, आत्मा की साधना में आप मेरू के समान निश्चल हो। तुच्छ असुरदेव पिछली तीन रातों से घोर उपद्रव करते रहे, फिर भी आप आत्मसाधना से नहीं डिगे, जरा-सा विकल्प भी नहीं किया। धन्य है आपकी वीतरागता! आपके पास एक नहीं, परन्तु अनेक लब्धियाँ हैं, आप चाहें तो असुरदेव को क्षणमात्र में परास्त कर सकते हो/भगा सकते हो।....परन्तु बहुत उपसर्ग कर्त्ता के प्रति भी आपको क्रोध नहीं। – ऐसे आप चैतन्य के ध्यान के द्वारा केवलज्ञान साधने में तत्पर हो।"

इसप्रकार बहुत स्तुति करते रहे....; लेकिन वहाँ मध्यरात्रि के समय वह दुष्ट देव फिर से आया और मुनियों के ऊपर पुनः उपसर्ग करने लगा। भयानक रूप धारण करके राक्षस और भूतों के समूह नाचने लगे। विचित्र आवाज कर-करके शरीर में से अग्नि की लपटें निकालने लगे....हाथ में तलवार-भाला लेकर कूदने लगे। उनके शोर से पर्वत की शिलाएँ भी काँपने लगीं। मानो कोई भयंकर भूकम्प आया हो।

जिस समय बाहर में यह सब कुछ हो रहा था, उसी समय दोनों मुनिवर अंदर शुक्ल-ध्यान में मग्न होकर आत्मा के अपार आनंद का

अनुभव कर रहे थे। बाहर क्या हो रहा है ? इस पर उनका लक्ष्य नहीं था। सीता यह दृश्य देखकर पुनः भयभीत हो गयी, तब राम ने कहा –

"देवी ! तुम डरो मत, तुम इन मुनिवरों के चरणों में ही बैठी रहो, हम इन दुष्टों को भगा कर आते हैं।"

– ऐसा कहकर सीता को मुनि के चरणों के समीप छोड़कर राम-लक्ष्मण ने दुष्ट असुरदेवों को ललकारा।

राम के धनुष की टंकार से ऐसा लगा मानो वज्रपात हो गया हो। लक्ष्मण की सिंह-गर्जना सुन करके अग्निप्रभ-देव समझ गया कि वे कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं, ये तो महाप्रतापी बलदेव और वासुदेव हैं, अतः राम-लक्ष्मण का पुण्य-प्रताप देखकर वह अग्निप्रभदेव भाग गया और उसकी सब माया भी समाप्त हो गई तथा फिर से उपसर्ग दूर हुआ।

उपसर्ग दूर होते ही ध्यान में लीन देशभूषण और कुलभूषण मुनिराजों को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। तब केवलज्ञान के उत्सव को मनाने के लिए बहुत देव आये। चारों ओर मंगलनाद होने लगा। रात्रि भी दिव्य प्रकाश से जगमगा उठी। केवलज्ञान के प्रताप से रात और दिन में कोई भेद नहीं रहा। मानो रात्रि की छाया असुर कुमार देव के साथ चली गई हो।

अहो, अपने सामने मुनि भगवन्तों को केवलज्ञान होता देखकर राम-लक्ष्मण-सीता के तो आनंद का पार न रहा। हर्षित होकर उन्होंने सर्वज्ञ भगवन्तों की भक्ति-भाव से परम स्तुति की, दिव्यध्वनि द्वारा भगवान का उपदेश सुना। अहो, प्रभु के श्रीमुख से चैतन्यतत्त्व की कोई परम अद्भुत गंभीर महिमा सुनकर उनके आनन्द का पार न रहा। देशभूषण-कुलभूषण के पिता जो मरकर गरुडेन्द्र हुए थे, वे भी केवली भगवान के दर्शन करने के लिए आये। राम-लक्ष्मण से वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और आदरपूर्वक बोले – "ये दोनों मुनि हमारे पूर्वभव के पुत्र हैं, तुमने इनकी भक्ति की और इनका उपसर्ग दूर किया – यह देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। इसलिए जो माँगना हो, वह माँगो, मैं वह दूँगा।"

तब राम ने कहा – "जब कभी हम पर संकट आये, तब आप हमारी मदद करें।"

यह वचन प्रमाण करके गरुडेन्द्र ने कहा – "अच्छा, तुम यही समझना कि मैं तुम्हारे पास ही हूँ।"

केवली भगवान की वाणी सुनकर अनेक जीवों ने धर्म प्राप्त किया। राजा और प्रजाजनों ने नगरी में आकर आनंदपूर्वक उत्सव मनाया। केवलज्ञान के प्रताप से सर्वत्र आनंद-मंगल छा गया। भगवान की वाणी में ऐसा आया कि रामचन्द्रजी इसी भव से मोक्ष प्राप्त करेंगे।

"श्री रामचन्द्रजी बलभद्र हैं, तद्भव मोक्षगामी है।"

ऐसा केवली प्रभु की वाणी में सुनकर लोगों ने उनका बहुत सम्मान किया। मुनिवरों को केवलज्ञान उत्पन्न होने से उस भूमि को महा तीर्थरूप समझकर राम-लक्ष्मण-सीता बहुत दिनों तक वहीं रहे और महान उत्सवपूर्वक पर्वत पर अनेक मंदिर बनवाकर अद्भुत जिन-भक्ति की। उसी समय से यह पर्वत 'रामटेक तीर्थ' के नाम से प्रसिद्ध है।

गगनविहारी देशभूषण-कुलभूषण केवली भगवन्त दिव्य-ध्वनि से अनेक देशों के भव्यजीवों को धर्म का प्रतिबोध करते हुए अयोध्यानगरी में पधारे। तब फिर से उन मुनि भगवन्तों के दर्शन करके राम-लक्ष्मण-सीता, भरत-कैकेयी आदि को बहुत हर्ष हुआ। उनका धर्मोपदेश सुनकर भरत ने दीक्षा ली और हाथी ने भी श्रावक व्रत अंगीकार किये। उसके बाद विहार करते हुए वे दोनों केवली भगवन्त कुंथलगिरी पधारे और वहाँ से मोक्ष प्राप्त कर सिद्धालय में विराजमान हुए। दोनों भाई संसार में अनेक भव साथ रहे और आज मोक्ष में भी साथ ही विराजमान हैं।

उन केवली भगवन्तों को हमारा बारम्बार नमस्कार हो।

कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र महाराष्ट्र में है, वहाँ से ये देशभूषण तथा कुलभूषण मुनिवर मोक्ष गये हैं। उनकी यादगार के लिये अभी भी पहाड़ के ऊपर उन दो भगवन्तों की सुन्दर प्रतिमायें हैं। सिद्धक्षेत्र बहुत रमणीय स्थान है। देशभूषण-कुलभूषण दोनों चार भव से सगे भाई थे। आप उनकी जीवन कथा पढ़कर अपने जीवन में आत्मसात कर उन जैसे बनने की भावना भाते हुए कल्याण मार्ग पर लगें यही इस कथा का उद्देश्य है।

卐 वीतरागाय नमः 卐

पुण्यप्रकाश अदालत में

(प्रथम दृश्य)

(प्रवचन मण्डप में पण्डितजी प्रवचन कर रहे हैं तथा सभी श्रोता शान्ति से सुन रहे हैं।)

(मंगलाचरण)

मंगलमय मंगलकरण, वीतराग-विज्ञान।
नमौं ताहि जातैं भये, अरहंतादि महान ॥१॥
करि मंगल करिहौं महा, ग्रंथकरन को काज।
जातैं मिलै समाज सब, पावै निजपद राज ॥२॥

यह मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रन्थ है। आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने इसके सातवें अध्याय में अपने मौलिक चिन्तन से जैनाभासी जीवों में पाई जाने वाली सात तत्त्व सम्बन्धी भूलों का वर्णन किया है। यहाँ आस्रव तत्त्व सम्बन्धी भूल बताते हुए वे शुभभाव में धर्म मानने का निषेध करते हुए कहते हैं कि "**जहाँ वीतराग होकर ज्ञातादृष्टारूप प्रवर्ते वहाँ निर्बन्ध है, सो उपादेय है सो ऐसी दशा न हो तबतक प्रशस्त रागरूप प्रवर्तन करो; परन्तु श्रद्धान तो ऐसा रखो कि यह भी बन्ध का कारण है, हेय है; श्रद्धान में इसे मोक्षमार्ग जान [illegible] मिथ्यादृष्टि ही होता है।**"

अरे भाई ! दया-दान-पूजा का भाव तो अनन्तबार किया; पर कभी आत्मसन्मुखतारूप शुद्धभाव नहीं किया; जो कि निश्चय से धर्म है। हे भाई ! यह दुर्लभ नरभव पाकर भी आत्मा का रस नहीं चखा, शुभभाव और पुण्यबंध के रस में ही पड़ा रहा, इससे तो संसार ही बढ़ेगा। हाँ, ये बात भी है कि जिनागम में विशुद्धिलब्धिरूप शुभभाव को सम्यक्त्व का कारण कहा है; लेकिन विशुद्धिलब्धिरूप शुभभाव तो अनन्तबार किया, फिर भी सम्यक्त्व प्रकट नहीं हुआ, अपितु मिथ्यात्व अवस्था में देवादि पर्याय धारण करके और

पुनः वहाँ से मरकर एकेन्द्रिय आदि में ही गया और संसार ही बढ़ाया। मैं यह नहीं कहता कि दया-दान-पूजादि छोड़कर हिंसादि पापों में प्रवर्तन करो; इससे तो साक्षात् नरक में ही जाना पड़ेगा; अतः जबतक शुद्धोपयोगरूप धर्म प्रगट न हो तबतक शुभभाव करने में कोई हानि नहीं है, परन्तु उसमें धर्म नहीं मानना चाहिये। धर्म मानने पर महा-मिथ्यात्व का दोष आता है। ज्ञानियों को भी यह शुभभाव सहज ही होते हैं, परन्तु वे उन्हें हेय जानते हैं यदि उपादेय जाने तो सम्यक्त्वी न रहें। इसलिए सभी जीव पाप प्रवृत्ति को छोड़कर; दया-दान-पूजा के शुभभावों को हेय जानकर; शुद्धभावरूप धर्म का आस्वादन करके मोक्षसुख की प्राप्ति करें – इसी मंगल भावना के साथ मैं विराम लेता हूँ। ***(जिनवाणी स्तुति होती है)***

(प्रवचन के पश्चात् दो मित्र मन्दिर से निकलते हुए कुछ चर्चा कर रहे हैं।)

धर्मचन्द – भाई पुण्यप्रकाश ! आज तो पण्डितजी ने आँखें खोल दीं, हमने तो बचपन से ये ही पढ़ा था कि रोज दया-दान-पूजा करेंगे तो बंधन कट जायेंगे; पर ये तो अनन्तबार किया पर धर्म तो हुआ ही नहीं। अरे हम भी तो रोज कर रहे हैं। सुबह उठे, स्नान किया और पूजा-पाठ करने मन्दिरजी चले गये और हो गया धर्म; लेकिन सुख तो मिला ही नहीं। अरे ! मिलता भी कैसे ? सुख तो आत्मानुभवरूप शुद्ध भाव में है। इसकी तरफ ध्यान ही नहीं गया। छहढाला में पण्डितजी ने सही कहा है –

जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन्ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके॥

इसलिये भाई पुण्यप्रकाश अब तो वीतरागता रूप...

पुण्यप्रकाश – (गुस्से में) ठीक है, ठीक है, बहुत हो गया। एक वो पण्डितजी थे; जो घन्टे भर से दया-दान-पूजा को संसार बंधन का कारण कह रहे थे। यदि इनसे कर्म नहीं कटते तो जिनवाणी में इन्हें मोक्ष का कारण क्यों लिखा है ? और एक ये हैं जो इसे हेय और संसार का कारण कहते हैं। खूब मनमानी मचा रखी है; अगर तुम

लोगों की बात मान ली जाये तो मन्दिर, पूजा सब ही बंद हो जायें और तो और जैनधर्म का नाम लेने वाला भी दुनिया में न बचे। समझते तो हैं नहीं, तान छेड़ते हैं।

धर्मचन्द – नहीं भाई पुण्यप्रकाश ! पण्डितजी शुभभाव का निषेध थोड़े ही कर रहे थे। *वह तो ज्ञानियों को भी होता है, पर जिस तरह ज्ञानी* उसे हेय जानते हैं, धर्म नहीं मानते; उसीप्रकार हमें भी पुण्यभाव में धर्म नहीं मानना चाहिये। अरे भाई ! वे पूजा, प्रक्षाल, मन्दिर का निषेध नहीं करते इनमें धर्म मानने का निषेध करते हैं। अरे स्वयं को ही देखो न ! हम पूजा-प्रक्षाल करते-करते वृद्ध हो गये पर धर्म प्रगट नहीं हुआ। अरे धर्म तो आत्मानुभव से होता है और वह शुभाशुभ भावों से एकदम भिन्न है।

पुण्यप्रकाश – तुम्हारी अक्ल तो घास चरने चली जाती है धर्मचन्द ! अरे सोचो ! वैसे ही तो आजकल लोग मन्दिर में नहीं आते कोई कभी-कभार आये भी तो उससे ये कह दो कि मन्दिर आने से धर्म नहीं होता इससे संसार बढ़ता है, फिर तो हो गई छुट्टी, तुम अकेले ही मन्दिर में बैठे राग अलापते रहना, तभी तुम्हें चैन मिलेगा।

धर्मचन्द – देखो भाई पुण्यप्रकाश ! तीन काल में कभी भी शुभ भाव से धर्म नहीं होगा। कोई भी आज तक दया-दान-भक्ति के भाव से मोक्ष नहीं गया, सत्य तो यही है। इसलिए हर कथन की अपेक्षा समझनी चाहिये।

पुण्यप्रकाश – मैं नहीं जानता तुम्हारी अपेक्षा-क्पेक्षा। ये सब पण्डितों के हथकण्डे हैं। कभी कहते हैं कि रोज मन्दिर जाओ, रात को मत खाओ, आलू-प्याज मत खाओ और कभी कहते हैं मन्दिर जाने से धर्म नहीं होता है और तू भी जब से इन जयपुर के पण्डितों के चक्कर में पड़ा है, तब से इनका ही राग अलापने लगा है; लेकिन अब ये ज्यादा दिन नहीं चलेगा; कुछ न कुछ इन्तजाम तो करना

ही पड़ेगा। नहीं तो तुम लोग धर्म को भ्रष्ट कर दोगे। इन सब की जड़ तो पण्डितों का मुखिया कानजीस्वामी है, उसी ने यह सारा मायाजाल रचा है; मैं तुम सबको ठीक करके ही दम लूँगा। अरे अदालत में खड़ा कर दूँगा; फिर देखना कौन सच्चा है और कौन झूठा ?

धर्मचन्द – पुण्यप्रकाश ! तुम्हारी इच्छा अदालत में जाने की है तो फैसला वहीं हो जाये। वैसे भी सत्पुरुष कानजीस्वामी ने हमें दिगम्बर आचार्यों के ग्रन्थ खोलकर दिखाये हैं कोई मन की बातें नहीं कहीं।

पुण्यप्रकाश – अरे घबराता क्यों है, अदालत में तो चल; चल तो सही फैसला वहीं होगा, अब जो भी कहना है अदालत में ही कहना।

धर्मचन्द – ठीक है जैसी तुम्हारी इच्छा।

(द्वितीय दृश्य)

(नेपथ्य से – तो आपने देखा कि पुण्यप्रकाश ने अन्त में अदालत में जाने की धमकी दे दी; लगता है कि अब इस बात का निर्णय अदालत ही करेगी कि शुभभाव में धर्म है या शुद्ध भाव में ? तो चलिये; देर किस बात की। ये है स्याद्वाद हाईकोर्ट जहाँ पर पहले भी निमित्त-उपादान जैसे जटिल सिद्धान्त का निष्पक्ष निर्णय हुआ था। अरे यहाँ तो पुण्यप्रकाश पहले से ही अपने वकील के साथ डटे हुए हैं और धर्मचन्दजी भी अपने वकील से सलाह मशविरा कर रहे हैं और लीजिये जज साहब भी आ गये। तो आइये देखते हैं आज की बहस...)

(अदालत का दृश्य, न्यायाधीश महोदय अदालत में आते हैं और उनके सम्मान में सभी खड़े हो जाते हैं।)

जज – अदालत की कार्यवाही प्रारम्भ की जाए।

पुण्य वकील– सम्माननीय जज साहब ! मैं पुण्यप्रकाश की ओर से आज के मुकद्दमे की पैरवी करूँगा। आज से साठ वर्ष पहले की बात है। जब दिगम्बर जैन समाज में कानजीस्वामी नामक व्यक्ति का

आगमन नहीं हुआ था, तब सभी विद्वान और सारी समाज दया-दान-पूजा को ही धर्म मानती थी, मोक्ष का कारण मानती थी। ये हेय हैं, मोक्ष के कारण नहीं हैं, ये तो किसी ने सोचा भी नहीं था। बालक से वृद्ध तक, मूर्ख से पण्डित तक सब दया-दान-पूजा के ही गीत गाते थे। लेकिन जब से समाज में कानजीस्वामी नामक व्यक्ति का आगमन हुआ है तब से सारी हवा ही बदल गई है, जो व्यक्ति पहले पूजा-व्रतादिक में ही धर्म मानते थे, अब वे ही लोग उसे हेय कहते हैं और धर्म मानने से इन्कार करते हैं।

और तो और जज साहब ! इन भावों को बंध का कारण बताकर संसार का ही कारण कहते हैं। यदि यही हाल रहा तो लोगों को दया-दान-पूजादिक से विश्वास ही उठ जायेगा, मन्दिर सूने पड़े रहेंगे और धर्म नष्ट हो जायेगा। यही अभियोग अभियुक्त धर्मचन्द पर लगाये गए हैं।

जज – धर्मचन्द आपका कोई वकील है क्या ?

धर्म वकील – जज साहब ! मैं धर्मचन्द की ओर से इस मुकद्दमे की पैरवी करूँगा। भाई पुण्यप्रकाश के वकील कह रहे थे कि दया-दान-पूजादि के भाव मोक्ष का कारण हैं, धर्म हैं, उपादेय हैं; और ये मोक्ष में कारण नहीं हैं, हेय हैं – ऐसा वातावरण कानजीस्वामी के आगमन से हुआ है। यह आरोप सरासर बेबुनियाद और तर्कहीन है तथा लोगों में फैलाया गया झूठ है। कानजीस्वामी ने तो हमें हमारे आचार्यों की ही बातें समझाई हैं; ये बात तो आदिनाथ से लेकर महावीर, तक महावीर से कुन्दकुन्द तक और कुन्दकुन्द से टोडरमलजी तक सभी ने कहीं हैं।

कानजीस्वामी ने तो हमें हमारी भाषा में समझाया है कि दया-दान-पूजादि का भाव तो भूमिकानुसार आता है, लेकिन उसे उपादेय मानना और मोक्ष का कारण मानना मिथ्यात्व है।

इसलिये जज साहब ! सत्य-असत्य का निर्णय ठोस तथ्यों को मद्दे नजर रखते हुए किया जाये; मैं इतना ही कहना चाहता हूँ।

पुण्य वकील– मीलॉर्ड आज की बहस का मुद्दा है कि पुण्य मोक्षमार्ग में हेय है या उपादेय ? मेरे मुद्दई वकील का कहना है कि शुभभाव में धर्म नहीं है और वह मोक्षमार्ग में हेय है; तो फिर मैं पूछता हूँ कि मेरे काबिल दोस्त रोज सुबह छह बजे उठकर; नहा-धोकर मन्दिर क्यों जाते हैं ? तथा पूजा और स्वाध्याय क्यों करते हैं ? यदि ये हेय हैं तो इनमें अपना वक्त क्यों बरबाद कहते हैं ? जंगल में जाकर ध्यान क्यों नहीं लगाते ? इसीलिये न, कि मेरे काबिल दोस्त भी इसे धर्म मानते हैं। इसे मोक्षमार्ग में उपादेय मानते हैं। क्या मेरे काबिल दोस्त इस बात से इंकार करते हैं ? देट्स आल।

धर्म वकील – मीलॉर्ड ! शायद मेरे काबिल दोस्त ने इस बात पर विचार नहीं किया कि रोज मन्दिर जाने वाले और भक्ति पूजन करने वाले लोग भी भव-भ्रमण से नहीं छूट पाते। यदि इन सबसे धर्म होता तो हम सब कब के मुक्त हो गये होते; लेकिन नहीं हुये, क्योंकि ये मोक्षमार्ग नहीं बल्कि वे भाव हैं जो मोक्ष जाने के पूर्व छूट जाते हैं, यदि न छूटें तो मुक्त न हों। हाँ, मैं यह बात मानता हूँ कि मैं रोज मन्दिर जाता हूँ, रोज स्वाध्याय करता हूँ; लेकिन यह करते-करते मोक्ष हो जायेगा यह मैं कदापि नहीं मानता। अगर मैं इनमें धर्म मानकर सन्तुष्ट हो गया तो कभी मुक्त नहीं हो पाऊँगा। इसलिये जज साहब मैं शुभ भावों का निषेध नहीं कर रहा हूँ वे तो भूमिकानुसार होते ही हैं और होना भी चाहिये; लेकिन मैं इन्हें धर्म मानने से इंकार करता हूँ। देट्स आल।

पुण्य वकील– ठीक है वकील साहब ! ऐसा मान भी लिया जाये कि दया-दान-पूजादिक के भाव मोक्षमार्ग और धर्म नहीं हैं तो फिर मैं आपसे पूछता हूँ कि आज-तक बिना देव-शास्त्र-गुरु को माने और बिना स्वाध्याय किये कोई सम्यग्दृष्टि हुआ है। आजतक

कोई बिना महाव्रतादिक पाले मुक्त हुआ है। मुझे तो लगता है कि मेरे काबिल दोस्त बिना महाव्रतादिक पाले सीधे कोर्ट से ही मोक्ष जाना चाहते हैं। क्यों वकील साहब क्या इरादा है?

धर्म वकील – जज साहब ! मैं अपने काबिल दोस्त के सवाल का जवाब देने से पहले उनसे ही कुछ सवालात पूछने की इजाजत चाहूँगा। मेरा पहला सवाल है कि – पाँच पाण्डवों में से किस-किस ने मुनिदीक्षा ली थी ?

पुण्य वकील– मीलॉर्ड ! मेरे काबिल दोस्त नाजायज सवाल पूछकर मुझे गुमराह करना चाहते हैं और अदातल का कीमती वक्त जाया कर रहे हैं, क्योंकि मेरे सवालों का इन बातों से कोई ताल्लुक नहीं।

धर्मचन्द – ताल्लुक है जज साहब ताल्लुक है। मैं अदालत से दरखास्त करूँगा कि मेरे चन्द सवालों का जवाब दिया जाए।

जज – वकील साहब के सवालों का जवाब दिया जाए।

धर्म वकील – हाँ तो मैं पूछ रहा था कि पाँच पाण्डवों में से किस-किस ने मुनिदीक्षा ली थी ?

पुण्य वकील– पाँचों पाण्डवों ने ही मुनिदीक्षा ली थी।

धर्म वकील – क्या आप उनके नाम बता सकते हैं ?

पुण्य वकील– हाँ क्यों नहीं ? उनके नाम हैं – युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन; जो शत्रुञ्जय से मुक्त हुए हैं और नकुल एवं सहदेव जो कि... खैर मैंने नाम बता दिये हैं।

धर्म वकील – अरे रुक क्यों गये वकील साहब? बोलिये न !

पुण्य वकील– हाँ ! नकुल और सहदेव सर्वार्थसिद्धि के देव बने।

धर्म वकील – जज साहब ! मेरे काबिल दोस्त ने अभी अपने मुँह से कहा कि पाँचों पाण्डवों ने महाव्रत धारण किये थे; फिर भी तीन मोक्ष गये और दो स्वर्ग गये; क्या नकुल सहदेव ने महाव्रत पालन करने

में कोई कमी की थी ? जिसके कारण तैंतीस सागर तक संसार में रहने की सजा हुई; जिसके कारण उन्हें पूर्ण निराकुल मोक्ष पद से वंचित रहना पड़ा ? नहीं जज साहब ! नहीं; कमी तो मात्र शुद्धापयोग की निरन्तरता में थी। वे शुद्धोपयोग से गिरकर शुभभाव में आ गये, जिसके कारण उन्हें मुक्ति के स्थान पर संसार ही मिला।

अगर महाव्रतादिक धारण करने से ही मोक्ष होता तो सभी पाण्डव मुक्त हो गये होते। लेकिन ऐसा नहीं हुआ; क्योंकि जज साहब महाव्रतादिक शुभभाव हैं इसलिये बंध के कारण हैं और जो बंध का कारण हो वह मोक्ष का कारण नहीं हो सकता। इसलिये दया-दान-पूजादिक के भाव भी उपादेय नहीं हैं। मैं इतना ही कहना चाहूँगा और अदालत से दरखास्त करूँगा कि मेरे काबिल दोस्त को अदालत में ठोस तथ्य पेश करने की हिदायत दी जाये। देट्स आल।

जज – अदालत का वक्त बरबाद न किया जाये; अदालत में ठोस तथ्य ही पेश किए जायें।

पुण्य वकील– मीलॉर्ड ! ठोस तथ्यों के रूप में मैं अदालत में कुछ प्रथमानुयोग की घटनाओं को पेश करना चाहूँगा। मैं सबसे पहले इन्द्रभूति गौतम की याद दिलाना चाहूँगा जो पूर्व में ब्राह्मण था और जैन शासन का घोर विरोधी था जज साहब ! यदि उसका पुण्य का उदय न होता तो समवशरण तक कैसे पहुँचता ? और तीर्थंकर के दर्शन कर सम्यक्त्वी कैसे होता ? महाव्रत धारण करके गणधर कैसे बनता ? ये सब पुण्य का ही प्रभाव है जज साहब; जिसने मिथ्यादृष्टि को गणधर बना दिया। और दूसरे तथ्य के रूप में मैं भगवान महावीर के उस सिंह के भव की याद दिलाना चाहूँगा, जब वे एक क्रूर शेर की पर्याय में थे उस घनघोर जंगल में जहाँ वह क्रूर शेर हिरण को मारकर खा रहा था तभी वहाँ दो

चारणऋद्धिधारी मुनियों का आगमन होता है। मैं पूछता हूँ जज साहब ! क्या बिना पुण्य के उदय के इतना उत्कृष्ट समागम मिल सकता था, सम्यक्त्व हो सकता था ? नहीं हो सकता था इसीलिये मैं कह रहा हूँ जज साहब पुण्य मोक्षमार्ग में उपादेय है और पुण्य के कारण शुभ भाव भी मोक्षमार्ग में उपादेय है। क्या मेरे काबिल दोस्त इस अतीत को कैसे झुठला सकते हैं ?

धर्म वकील – हाँ जज साहब ! वकील साहब द्वारा दिये गये तमाम तथ्यों से भी ये सिद्ध नहीं होता कि पुण्य मोक्षमार्ग में उपादेय है बल्कि ये सभी घटनायें आत्मानुभूति रूप शुद्धोपयोगरूप शुद्धभाव की ही विजय को ही साबित करनेवाली हैं।

सबसे पहले मेरे काबिल दोस्त ने कहा कि इन्द्रभूति गौतम के पुण्य का उदय था, इसलिये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति हुई। अगर समवशरण आदि में जाने रूप पुण्योदय से मोक्षमार्ग प्रगट होता है तो मंखिलगोशाल को क्यों नहीं हुआ ? वह तो इन्द्रभूति गौतम से ६६ दिन पहले समवशरण गया था और ६६ दिन रुका भी था। क्या वह पुण्य के उदय से नहीं पहुँचा था ? जज साहब ! पहुँचा था, पुण्योदय से ही पहुँचा था; क्योंकि बिना पुण्योदय के प्रशस्त संयोग नहीं मिला करते। इन सबके बावजूद वह मिथ्यादृष्टि रहा। क्या उसके पुण्य में कोई कमी थी, कमी तो एक चीज में थी; जिसका नाम है निर्विकल्प आत्मानुभूति, शुद्धभाव; जिसके होने पर नियम से मोक्षमार्ग होता है।

दूसरे प्रमाण के रूप में उन्होंने कहा कि शेर की पर्याय में महावीर के जीव को पुण्य के कारण सम्यक्त्व हुआ, मैं अपने काबिल दोस्त को थोड़ा और पीछे ले जाना चाहूँगा। जब महावीर का ही जीव मारीचि की पर्याय में था तब साक्षात् तीर्थंकर भगवान आदिनाथ का संयोग हुआ था और तीर्थंकर का समागम उत्कृष्ट पुण्य के बिना हो नहीं सकता। इतना पुण्य होने पर भी वहाँ

सम्यक्त्व क्यों नहीं हुआ ? सिंह की ही पर्याय में क्यों हुआ ? बात साफ है जज साहब ! वहाँ पुण्य होने पर भी आत्मानुभूति नहीं थी और यहाँ आत्मानुभूति थी इसलिये धर्म तो शुद्धात्मा की अनुभूतिरूप शुद्धभाव से ही प्रगट होता है, पुण्य या शुभ भाव से नहीं। हम भी अनन्तबार समवशरण में गये और इस भव में भी बचपन से रोज मन्दिर जाते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, सत् समागम करते हैं; क्या हमारा पुण्य का उदय नहीं है। पुण्य का उदय है जज साहब और शुभभाव भी है, लेकिन आत्मानुभूति नहीं है इसीलिये सम्यक्त्व भी नही है। इस बात का कोई जवाब है वकील साहब ?

(पुण्य वकील रूमाल से पसीना पोंछता है और चुप रह जाता है)

धर्म वकील – आप देख रहे हैं जज साहब इनकी चुप्पी ही इनकी पराजय का भान करा रही है।

पुण्य वकील– (**थोड़े आत्मविश्वास के साथ**) जज साहब ! लगता है मेरे काबिल दोस्त ने अभी जैन लॉ की पढ़ाई पूरी नहीं की है या फिर अन्तिम पेपर नकल से पास किया है; क्योंकि ये इतना भी नहीं जानते है कि अदातल के अन्तिम निर्णय से पहले फैसला नहीं होता और मैं अभी हारा नहीं हूँ। अभी तो मेरे पास और भी ऐसे पक्के सबूत और गवाह मौजूद हैं; जो यह सिद्ध करके रहेंगे कि पुण्य ही मोक्षमार्ग में उपादेय है उनमें से एक सबूत यह कैसेट है। मैं इसे अदालत में दिखाना चाहता हूँ। जो केस को हाथ में रखे आँवले की तरह साफ कर देगा।

जज – इजाजत है।

(एक कैसेट में एक व्यक्ति पूजन कर रहा है और उसे देखकर कुछ लोग बातें कर रहे हैं।)

चरणदास– देखो भाई ! भगवानदास कितने धर्मात्मा जीव हैं सुबह पाँच बजे

से मन्दिर में आ जाते हैं और चार घंटे रोज पूजन करते हैं और फिर जाकर अन्न-जल ग्रहण करते हैं – ऐसे धर्मात्मा इस पंचम काल में देखने को ही कहाँ मिलते हैं !

ज्ञानचन्द – हाँ ये पूजा-पाठ तो बहुत करते हैं, लेकिन भाई चरणदास ये कभी स्वाध्याय चर्चा में दिखाई नहीं देते हैं।

करोड़ीमल – तो क्या हुआ भगवान के चरणों की सेवा तो करते हैं और जो भगवान के चरणों की सेवा करते हैं वे ही सबसे बड़े धर्मात्मा हैं, वे ही सबसे पहले मोक्ष जाते हैं।

पुण्य वकील– बस ! देखा जज साहब ! पूजा-भक्ति करने वालों को ही जगत के लोग धर्मात्मा कहते हैं, क्योंकि पूजा भक्ति आदि में धर्म है; अत: शुभभाव धर्म होने से मोक्षमार्ग में उपादेय है इसके साथ ही मैं कुछ तर्क और आगम प्रमाणों को भी अदालत में पेश करने की इजाजत चाहता हूँ।

जज – इजाजत है।

पुण्य वकील– जज साहब इन तर्कों और आगम प्रमाणों से पुण्य की उपादेयता सिद्ध हो जाती है।

सबूत नं. (१) मनुष्य भव से ही मोक्ष का मार्ग खुलता है और मनुष्य भव पुण्य के बिना नहीं मिल सकता।

सबूत नं. (२) प्रथमानुयोग तथा चरणानुयोग में पुण्य को पग-पग पर ही धर्म कहा गया है।

सबूत नं. (३) २८ मूलगुण जिन्हें चारित्र कहा जाता है, शुभभाव हैं। ''चारित्र खलु धम्मो'' यह अष्टपाहुड़ का प्रामाणिक वाक्य है।

सबूत नं. (४) छठवें गुणस्थान में शुभोपयोग होता है और इसमें रहने वाले मुनि मोक्षमार्ग के अग्रणी पथिक होते हैं।

सबूत नं. (५) और ये मेरा अन्तिम प्रमाण ! पुण्य को ही प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण कहा है। तीर्थंकर प्रकृति का पुण्य जो कोई एकबार बांध ले तो

मोक्ष जाने की गारंटी मिल जाती है। और विनय पाठ में तो गजब की ही बात आई है –

तुम पद पंकज पूजतैं विघ्न रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरें विष निरविषता थाय।।
चक्री खग सुर इन्द्र पद मिलें आपतैं आप।
अनुक्रम करि शिव पद लहैं मेंट सकल हनि पाप।।

अर्थात् भगवान के चरण कमल की सेवा करने से शिवपद मिलता है तथा पण्डित द्यानतरायजी ने लिखा है –

तुम देवाधिदेव परमेश्वर, दीजै दान सवेरा।
जो तुम मोक्ष देत नहीं हमको कहाँ किहि डेरा।।

– क्या इन ठोस सबूतों को ठुकराया जा सकता है। इनका ठुकराना तो अनन्त तीर्थंकरों को ठुकराना होगा, क्योंकि ये सभी उनकी वाणी अर्थात् जिनवाणी में आये हुये तथ्यात्मक वाक्य हैं। क्या मेरे काबिल दोस्त के पास अब भी कुछ कहने को शेष है ?

जज – क्या धर्मवकील अपनी सफाई में अब भी कुछ कहना चाहेंगे ?

धर्म वकील – **(ताली बजाते हुए)** जज साहब ! मेरे काबिल दोस्त ने बड़ी मेहनत से ताश का महल खड़ा किया है, लेकिन अफसोस यह महल मेरे एक सबूत के झोंके से ही ढह जायेगा। इस कड़ी में मैं सबसे पहले भगवानदासजी को बुलाने की इजाजत चाहता हूँ।

जज – इजाजत है।

बाबू – भगवान के चरणों के दास, ईश्वर-भक्त भगवानदासजी अदातल में हाजिर हों। **(बाबू शपथ दिलवाता है)**

बाबू – बोलिये ! मैं जो कुछ कहूँगा, सच कहूँगा, सच के सिवा कुछ नहीं कहूँगा।

भगवानदास – (दोहराता है)

धर्म वकील – तो आपका नाम भगवानदासजी है ?

भगवानदास – मेरा नाम तो भगवानदास ही है, प्रभु की कृपा से।

धर्म वकील – तो आप रोज चार पाँच घंटे पूजा-पाठ करते हैं।

भगवानदास – हाँ जी ! ये तो साधारण बात है, प्रभु की कृपा से।

धर्म वकील – लेकिन आप रोज पूजन क्यों करते हैं ?

भगवानदास – लो ये भी कोई पूछने की बात है अरे रोज पूजन करने से अपने ऊपर प्रभु की कृपा होगी, पुण्य बंधेगा, सब पाप कट जायेंगे और हमें मोक्ष मिलेगा। अरे वो सुना नहीं है आपने –

प्रभु सुमरन तैं पाप कटत हैं।

धर्म वकील – भगवानदासजी यदि दया-दान-पूजा से ही मोक्ष जाते हैं, तो जिन तीर्थंकरों को आप पूजते हैं वे सब दया-दान-पूजादिरूप शुभ भाव को छोड़कर आत्मा में क्यों रम गये और आपने यह भी पढ़ा ही होगा –

लीन भये व्यवहार में उक्ति न उपजै कोय।
दीन भये प्रभु पद जपै मुक्ति कहाँ तै होय॥
प्रभु सुमरो पूजो पढ़ो करो विविध व्यवहार।
मोक्षस्वरूपी आत्मा ज्ञान-गम्य निरधार॥

क्यों भगवानदासजी बात समझ में आती है ? प्रभु की कृपा से।

भगवानदास – वकील साहब ! ये बात आज तक मेरी समझ में क्यों नहीं आई; प्रभु की कृपा से।

धर्म वकील – अब तो आ गया समझ में। आप जा सकते हैं और जज साहब! मेरे काबिल दोस्त द्वारा दिए गए तर्कों का उत्तर इस प्रकार है –

(१) मनुष्य भव तो अनन्त बार अभव्य जीव भी प्राप्त कर लेता है और मनुष्य भव ही क्या ! जैन कुल भी मिल जाता है, व्रतादि भी धारण कर लेते हैं, पर आत्मानुभव न होने के कारण सम्यक्त्व नहीं होता, मोक्षमार्ग नहीं खुलता।

(२) प्रथमानुयोग और चरणानुयोग में व्रतादि, तीर्थयात्रादि को जो धर्म कहा है; वह परम्परा की अपेक्षा कहा है, व्यवहार की अपेक्षा कहा है; इस अनुयोग की शैली ही यही है कि पाप से छुड़ाकर पुण्य मार्ग में प्रवर्तन कराते हैं; परन्तु वास्तविक रूप से तो वीतराग भाव में ही धर्म है।

(३) २८ मूलगुणरूप चारित्र निश्चय से चारित्र नहीं है। वीतरागरूप शुद्धोपयोग रूप चारित्र ही निश्चय से चारित्र है। २८ मूलगुण तो शुभ भाव होने के कारण चारित्र की कमजोरी हैं, यदि इनको ही वास्तविक चारित्र मान लिया जाये तो आत्मानुभव का लोप होने से आगे के गुणस्थानों का ही लोप हो जाये।

(४) छठवें गुणस्थान में जो शुभरूप भाव हैं, वह मुनियों को ही होता है जो मोक्षमार्ग के अग्रणी पथिक हैं। लेकिन जज साहब आगम में यह भी आता है कि पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण मुनियों को शुभोपयोग में आना पड़ता है और वह शुभोपयोग भी उनके सहज होता है; उनके लिये वह उपादेय नहीं है, यदि वे छठवें गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा ठहरे तो गुणस्थान गिर जाये, उन्हें वहाँ ऐसा लगता है जैसे आग की भट्टी में गिर गये हों।

(५) और जहाँ तक तीर्थंकर प्रकृति की बात है, तो यह प्रकृति क्षायिक सम्यग्दृष्टि आत्मानुभवी जीवों को ही बंधती है और इस प्रकृति के बंधने से मोक्ष की गारंटी मिलती है – ऐसी बात नहीं है, मोक्ष की गारंटी तो पहले ही मिल जाती है जब आत्मानुभव होता है। अरे वकील साहब ये प्रकृति मोक्ष का कारण नहीं हैं, मोक्ष का कारण तो शुद्धोपयोग रूप धर्म है; और तो और जबतक इस प्रकृति का संयोग रहता है, तबतक जीव संसारी ही रहता है। इसे नष्ट कर ही मोक्ष जा सकता है। और जहाँ तक *विनय पाठ की बात है तो मैं इसके लिए पण्डित स्वानुभव* शास्त्री को बुलाने की इजाजत चाहता हूँ; जिन्होंने विनयपाठ,

दर्शन पाठ स्तुतियों आदि का बहुत गहराई से अध्ययन किया है और ये इनके ऊपर शोध प्रबंध भी लिख रहे हैं, उनको बुलाने की इजाजत चाहता हूँ।

जज – इजाजत है।

बाबू – **(बुलाता है। शपथ दिलाता है)**

पण्डितजी – **(दोहराते हैं।)**

धर्म वकील – हाँ तो पण्डितजी ! क्या विनयपाठकार रागरूप शुभोपयोग को मोक्ष का कारण मानते हैं ?

पण्डितजी– देखिये वकील साहब ! बात दरअसल ये है कि जितना भी भक्ति और पूजन साहित्य है वह सब ही बहुमानपरक है। इसलिये कहीं तो भगवान को मोक्ष का दाता कह देते हैं, कहीं पूजन भक्ति से कर्म कटते हैं ऐसा कह देते हैं, सो ये सभी कथन उपचार जानना और विनयपाठकार ने स्वयं ही आगे कह दिया है कि –

राग सहित जग में रुल्यो मिले सरागी देव।
वीतराग भेट्यो अबै, मेटो राग कुदेव।।

देखिये, यहाँ तो राग को कुटेव कहकर मेटने को कहा है और जहाँ तक द्यानतरायजी की बात है तो उन्होंने भी कई जगह भजनों में रागादिक का निषेध किया है –

मगन रहो रे शुद्धातम में।
राग-दोष पर को उतपात, निहचै शुद्ध चेतना जात।।

यहाँ राग में शुभ और अशुभ दोनों ही राग आ गये।

धर्म वकील – प्वाइंट नोट किया जाये जज साहब। पण्डितजी ने अदालत में ये एकदम साफ कर दिया है कि भक्ति-पूजन साहित्य में कथन उपचार से किये जाते हैं।

मेरे काबिल दोस्त भी पूछना चाहें तो पूछें।

पुण्य वकील– हाँ ! मैं पण्डितजी से पूछना चाहता हूँ कि यदि शुभभाव बंध का कारण है तो सभी पूजनादि क्यों करते हैं और कवि लोग पूजनें क्यों लिखते हैं ? क्या वे हमें संसार में फंसाना चाहते हैं ?

पण्डितजी – नहीं वकील साहब ! बात ये नहीं है, कवियों ने तो हमारा उपयोग पाप में न लगे, ज्यादा से ज्यादा तत्त्व समझने में लगे इसलिये पूजनें लिखी हैं और इसीलिये हमें पूजनादि करना चाहिये, न कि पूजनादि को सब कुछ मानकर इनमें सन्तुष्ट होना चाहिये। चूंकि पूजनादि शुभ भाव हैं और शुभभाव पुण्यबंधका कारण होता है। बंध तो बंध है चाहे वह पुण्य का हो या पापका।

पुण्य वकील– ठीक है मैं इतना ही पूँछना चाहता था।

धर्म वकील – तो पण्डितजी आप पधारें ! जज साहब ! अब ये बात साबित हो चुकी है कि पुण्य का बंध हो चाहे पाप का बंध ! दोनों ही संसार में घुमाने वाले हैं; इसलिये दोनों एक ही हैं।

पुण्यप्रकाश – जज साहब ! यह झूठ बोल रहा है अभी तक तो पुण्य को मोक्षमार्ग ही नहीं मान रहा था; अब ऊपर से उसे पाप ही कह रहा है; इसे अदालत से निकाल दीजिये जज साहब! नहीं तो...

जज – आप को जो कुछ कहना है कटघरे में आकर कहिये।

पुण्यप्रकाश – अरे इनके लिये तो मेरा वकील ही काफी है।

जज – तो फिर आप चुप रहिये। धर्म वकील ! आप जो कह रहे थे, कहिये।

धर्म वकील – हाँ तो जज साहब ! मैं कह रहा था कि पुण्य और पाप दोनों एक ही हैं और शुद्ध भाव मोक्ष का कारण है; इसलिये अब फैसले में बेवजह देर न की जाये, जज साहब!

पुण्य वकील– अरे थोड़ा ठहरिये वकील साहब ! इतनी जल्दी भी क्या है ? आप तो यह कहना चाहते हैं कि मन्दिर में पूजन स्वाध्याय करें या दुकान पर बैठकर धंधा करें दोनों ही समान हैं।

धर्म वकील – अरे वकील साहब ! जरा सुनिये; पूजन स्वाध्याय करने में मन्द कषाय है तथा व्यापारादि में तीव्र कषाय है; इसलिये शुभ-अशुभ परिणाम में व्यवहार से भेद है; किन्तु दोनों का लक्ष्य पर की तरफ ही है, अत: बंध का कारण ही है। परमार्थ की अपेक्षा से दोनों एक ही हैं।

पुण्य वकील– (**झल्लाकर**) मैं नहीं जानता अपेक्षा-वपेक्षा; मैं तो ये जानता हूँ कि पाप संसार में रुलाने वाला है और पुण्य मुक्तिश्री दिलाने वाला है, इसलिये दोनों अलग-अलग हैं, इसी बात की पुष्टि के लिये मैं प्रतिष्ठित विधानाचार्य सुकृतकुमारजी को अदालत में बुलाने की इजाजत चाहता हूँ।

जज – इजाजत है।

बाबू – सुकृतकुमारजी हाजिर हों।

(बाबू शपथ दिलाता है तथा पण्डितजी दोहराते हैं।)

पुण्य वकील– सुकृतकुमारजी ! आप अदालत में ये बता दीजिये कि पुण्य-पाप समान नहीं हैं, बल्कि अलग-अलग हैं और साथ ही पुण्य मोक्षमार्ग में उपादेय है।

सुकृतकुमार – कौन कहता है कि पुण्य मोक्ष का कारण नहीं है और पुण्य-पाप समान हैं। जज साहब ! पुण्य और पाप कदापि एक नहीं हो सकते, पुण्य मोक्ष का कारण है और पाप कुगति का कारण है। पण्डित बनारसीदासजी ने एकदम साफ शब्दों में लिख दिया है–

कौऊ शिष्य कहै गुरु पांहीं, पाप-पुन्न दोऊ सम नाहीं।
कारण रस सुभाव फल न्यारे, एक अनिष्ट लगे एक प्यारे।।

अर्थात् पाप का कारण संक्लेशरूप अशुभ भाव है, जबकि पुण्य का कारण भक्ति पूजनादि शुभ भाव है। पाप का उदय होने से जीव को दु:ख होता है और पुण्य का उदय होने से जीव सुखी होता है। पाप का स्वभाव संक्लेशमय है, जबकि पुण्य का स्वभाव विशुद्ध भावरूप है। पाप के कारण दुर्गति होती है और पुण्य

के कारण सुगति होती है। – इतने सारे भेद तो हमें सामने दिखाई देते हैं, फिर इनको एक कैसे कहा जा सकता है – ये कोई मेरे घर की बात नहीं है। पण्डित बनारसीदासजी ने स्वयं लिखा है कि –

संक्लेश परिनामनिसौं पाप बंध होई,
विशुद्ध सौं पुन्न बंध हेतु भेद मानिए।
पाप के उदै असाता ताको है कटुक स्वाद,
पुन्न उदै साता मिष्ट रस भेद जानिए।।
पाप संक्लेश रूप पुन्न है विशुद्ध रूप,
दुहूँ को सुभाव भिन्न भेद यों बखानिये।
पाप सौ कुगति होई, पुन्न सौं सुगति होई,
ऐसौं फल भेद परतच्छि परमानिए।।

इसलिये पुण्य और पाप को एक मानना जिनवाणी का विरोध करना है और जहाँ तक मोक्षमार्ग की बात है; वहाँ भी पुण्योदय के बिना मोक्षमार्ग मिलना संभव नहीं है और शुभ भाव के बिना मोक्षमार्ग में आगे बढ़ना संभव नहीं है। और दौलतरामजी ने तो यहाँ तक कहा है कि –

घड़ी-घड़ी, पल-पल, छिन-छिन निशदिन, प्रभुजी का सुमिरन कर ले रे;
प्रभु सुमरन तैं पाप कटत है, जनम-मरण दुःख हर ले रे।।

अर्थात् प्रभु का सुमिरन करने से; प्रभु भक्ति से हमारे पाप कटते हैं और जनम-मरण का दुःख दूर होता है।

पुण्य वकील– सभी प्वाइंट नोट किये जायें जज साहब पण्डित सुकृतकुमारजी ने साबित कर दिया है कि पुण्य-पाप अलग-अलग हैं। क्या मेरे काबिल दोस्त भी कुछ पूछना चाहेंगे ?

धर्म वकील – यस माई लार्ड ! पुण्य वकील के गवाह सुकृतकुमार ने अदालत को गुमराह करने के लिये एकांगी और अधूरे बयान दिये हैं।

पुण्य वकील– आव्जेक्शन योर आनर।

जज – आव्जेक्शन सस्टेन्ट।

पुण्य वकील– जज साहब मेरे गवाह पर झूठे इल्जाम लगाये जा रहे हैं। मेरी अदालत से गुजारिश है कि मेरे गवाह को इस तरह अपमानित न किया जाये।

जज – *बिना बात सिद्ध किये कोई इल्जाम न लगाये जायें।*

धर्म वकील – जैसी आपकी इच्छा जज साहब ! **(सुकृतकुमार से पूछते हुए)** तो आप पुण्य और पाप को अलग-अलग मानते हैं।

सुकृतकुमार – जो सही है वही मानता हूँ।

धर्म वकील – और आपने अपनी बात सिद्ध करने के लिए समयसार नाटक का हवाला दिया।

सुकृतकुमार – जी हाँ ! वो भी ऐसा ही मानते हैं।

धर्म वकील – लगता है आपने बनारसीदास के समयसार नाटक के दो ही छन्द पढ़े हैं और उन्हीं के आधार पर अदालत को गुमराह कर रहे हैं। क्या आपने वे छन्द नहीं पढ़े ? जिसमें बनारसीदासजी ने कहा–

जैसे काहू चंडाली जुगल पुत्र जनैं तिनि,
एक दियो बांमन कै एक घर राख्यौ है।
बांमन कहायो तिनि मद्य मांस त्याग कीनों,
चाण्डाल कहायो तिनि मद्य मांस चाख्यो है।
तैसे एक वेदनी करम के जुगल पुत्र
एक पाप एक पुन्न भिन्न-भिन्न भाख्यौ है।
दुहू माहिं दौर धूप दोऊ कर्म बंध रूप,
यातैं ग्यानवंत नहिं काहू अभिलाख्यौ है।

और आपने पुण्य और पाप के कारणभेद, स्वरूपभेद, फलभेद, स्वादभेद बताये हैं, उसका भी समाधान करते हुए पण्डितजी ने आगे लिखा कि –

पाप बंध पुन्न बंध दुहू में मुकति नाहिं,
कटुक मधुर स्वाद पुग्गल को पेखिए।

संक्लेश विशुद्ध सहज दोऊ कर्म चाल,
कुगति सुगति जग जाल में विशेखिये।
कारणादि भेद तोहि सूझत मिथ्यात मांहि,
ऐसो द्वैतभाव ग्यानदृष्टि में न लेखिये।
दोऊ महा अंधकूप दोऊ कर्मबंध रूप,
दुहूं कौ विनाश मोख, मारग में देखिये।

क्यों सुकृतकुमारजी क्या अब भी आप ये कहना चाहेंगे कि पुण्य और पाप अलग-अलग हैं ?

सुकृतकुमार – चाहे जो भी हो भैया लेकिन पुण्य मोक्षमार्ग में तो उपादेय ही है; इसीलिए इसका कारण शुभ भाव भी मोक्षमार्ग में उपादेय है। बनारसीदासजी ने ये भी तो लिखा है –

मोख के सधैया ग्याता देसविरति मुनीश,
तिनकी अवस्था तो निरावलंब नाहीं है।

धर्म वकील – सुकृतकुमारजी आप फिर अदालत को बहकाने की कोशिश कर रहे हैं, इसके आगे की लाइन में ही उसे दौर धूप कहते हुए कहा है कि –

कहैं गुरु करम को नाश अनुभौ अभ्यास,
ऐसो अवलंब उन्हीं को उन पाहीं हैं।
निरुपाधि आतम समाधि सोई शिवरूप,
और दौर धूप पुद्गल परछाहीं हैं॥

और आपने जो दौलतरामजी के बारे में कहा है; वह भी सरासर गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने तो अनेकानेक भजनों में आत्मानुभव की ही महिमा गाई है। और कहा है –

आपा नहिं जाना तूने कैसा ज्ञानधारी रे
देहाश्रित कर क्रिया आपको मानत शिवमगचारी रे
शिव चाहे तो द्विविध कर्म तैं कर निज परिणति न्यारी रे।

क्यों सुकृतकुमारजी अब भी कुछ गुंजाइश है।

सुकृतकुमार – लगता है आप एकदम ठीक कह रहे हैं। मैं तो अब पण्डित दौलतरामजी और पण्डित बनारसीदासजी का गहराई से अध्ययन करूँगा।

जज साहब – यह अदालत सुकृतकुमार को अधूरे व एकांगी बयान देने के जुर्म में ये चेतावनी देती है कि आगे से कभी भी इस अदालत में इसप्रकार के बयान न दें। नहीं तो कानूनी कार्यवाही की जायेगी। अब आप जा सकते हैं।

धर्म वकील – जज साहब अब भी कोई गुंजाइश हो तो मैं अदालत में एक ऐसे पण्डितजी को बुलाना चाहता हूँ जिन्होंने पण्डित टोडरमलजी के "मोक्षमार्ग प्रकाशक" का बहुत गहराई से अध्ययन किया है तथा जिनकी गवाही इस बात को साफ कर देगी कि पुण्य मोक्षमार्ग में हेय है या उपादेय।

जज – इजाजत है।

बाबू – पण्डित स्वरूपचन्दजी शास्त्री अदालत में हाजिर हों।

(बाबू शपथ दिलवाता है पण्डितजी दोहराते हैं)

धर्म वकील – पण्डितजी साहब ! पण्डित टोडरमलजी के अनुसार पुण्य मोक्षमार्ग में हेय है या उपादेय ?

पण्डितजी – इस संबंध में अपने विचार रखते हुए पण्डित टोडरमलजी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक में लिखा है कि निचली दशा में कितने ही जीवों को शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का युक्तपना पाया जाता है; इसीलिये उपचार से व्रतादिक शुभोपयोग को मोक्षमार्ग कहा है; वस्तु का विचार करने पर शुभोपयोग मोक्ष का घातक ही है, क्योंकि बंध का कारण वही मोक्ष का घातक है – ऐसा श्रद्धान करना।

इसप्रकार शुद्धोपयोग को ही उपादेय मानकर उसका उपाय करना और शुभोपयोग-अशुभोपयोग को हेय जानकर उनके

त्याग का उपाय करना। जहाँ शुद्धोपयोग न हो सके वहाँ अशुभोपयोग को छोड़कर शुभ में ही प्रवर्तन करना, क्योंकि शुभोपयोग की अपेक्षा अशुभोपयोग में अशुद्धता की अधिकता है।

धर्म वकील – प्वाइंट नोट किया जाये जज साहब ! क्या मेरे काबिल दोस्त भी कुछ पूछना चाहेंगे ?

पुण्य वकील– यस मीलॉर्ड ! पण्डितजी साहब ! तो क्या शुभ भाव करने वाला कोई मोक्ष नहीं जा सकता तथा शुभ भाव और पुण्य से मोक्ष मान लिया जाये तो क्या परेशानी है ?

पण्डितजी – परेशानी अरे महापरेशानी खड़ी हो जायेगी; जो भी इन शुभ भावों में मोक्षमार्ग मानकर संतुष्ट हो जायेगा, उसे कभी भी सच्चा मोक्षमार्ग नहीं मिल सकेगा। वह अनन्तकाल तक संसार में ही भटकता रहेगा।

पुण्य वकील– तो क्या मोक्षमार्ग में शुभ भाव होते ही नहीं हैं ?

पण्डितजी – अरे वकील साहब मोक्षमार्ग में शुभ भाव नहीं होते; ऐसी बात नहीं हैं वहाँ पर भूमिकानुसार शुभ विकल्प आये बिना रहते नहीं हैं। हम गृहस्थों की क्या बात कहें मुनियों को भी २८ मूलगुण पालन करने रूप शुभ भाव आये बिना रहता नहीं है; परन्तु वे उसे उपादेय नहीं मानते हैं हेय ही मानते हैं और निरन्तर शुभ भाव से निकलकर शुद्धभाव में जाने का ही पुरुषार्थ करते रहतेहैं।

पुण्य वकील– बस मैं इतना ही पूछना चाहता था।

धर्म वकील – ठीक है पण्डितजी आप पधारें। जज साहब ! अब निर्णय में जरा-सी भी देर नही लगनी चाहिये, क्योंकि अब अदालत में सारी बात शीशे की तरह साफ हो चुकी है।

पुण्य वकील– नहीं जज साहब ! अभी बात साबित नहीं हुई है, क्योंकि मेरे

काबिल दोस्त ने जितने भी सबूत और गवाह अदालत में पेश किये हैं; उन सबने गृहस्थ पण्डितों के ही प्रमाण पेश किये हैं। मैं चाहता हूँ कि कुछ प्रामाणिक आचार्यों के भी प्रमाण पेश किये जायें।

(सभी लोगों में कानाफूसी शुरू हो गई)

जज – आर्डर ! आर्डर अदालत की गरिमा बनाये रखें।

धर्म वकील – आब्जेक्शन मीलॉर्ड ! मेरे काबिल दोस्त सम्माननीय पण्डितों को अप्रमाणिक कहकर तीर्थंकर और आचार्यों की वाणी को ही अप्रमाणिक कहना चाहते हैं, क्योंकि यह सभी पण्डित तीर्थंकर और आचार्यों की वाणी का ही प्रतिपादन करते हैं।

जज – अदालत में सम्माननीय पण्डितों की गरिमा को ठेस न पहुँचाई जाये। फिर भी धर्म वकील आचार्यों के प्रमाण भी पेश करें।

धर्म वकील – ठीक है जज साहब मैं अदालत में जैनों के सर्वमान्य आचार्य उमास्वामी के जैन संविधान; अनुच्छेद तत्त्वार्थसूत्र के दसवें अध्याय से यह सूत्र पेश करना चाहूँगा –

कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः।

क्या मेरे काबिल दोस्त इस सूत्र का अर्थ बता सकते हैं ?

पुण्य वकील– क्यों नहीं ! इसका अर्थ है सम्पूर्ण कर्मों के क्षय होने पर निराकुल मोक्ष पर्याय प्रगट होती है।

धर्म वकील – और आस्रव अधिकार में आये हुये "शुभः पुण्यास्य अशुभः पापस्य"; सूत्र का क्या अर्थ है ?

पुण्य वकील– शुभ भाव पुण्यास्रव और अशुभ भाव पापास्रव का कारण है।

धर्म वकील– प्वाइंट नोट किया जाये जज साहब ! मेरे काबिल दोस्त ने ये खुद स्वीकार किया है कि सम्पूर्ण कर्मों के नष्ट हो जाने पर मोक्ष होता है और शुभ भाव से पुण्यास्रव होता है और अशुभ भाव से पाप का आस्रव होता है, मतलब साफ है जज साहब ! मोक्ष बंध

रहित अवस्था है और शुभ भाव बंध का कारण होने से मोक्ष का विरोधी है और दूसरा प्रमाण प्रतिष्ठित आचार्य कुन्दकुन्द का देना चाहूँगा, उन्होंने तो गजब की बात कही है –

सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ।।१४६।।

इसका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

ज्यों लोह बेड़ी बांधती त्यों स्वर्ण की भी बांधती।
इस भांति ही शुभ अशुभ दोनों कर्म बेड़ी बांधती है ।।

इसलिये मोक्षमार्ग में वीतराग भाव ही उपादेय है और शुभ-अशुभ भाव हेय हैं।

तीसरा प्रमाण योगीन्दुदेवकृत जैन संविधान के अनुच्छेद योगसार के ७२वें दोहे में तो पुण्य को पाप ही कह दिया है –

पाप भाव को पाप तो जानत है सब लोय।
पुण्य भाव भी पाप है, जाने विरला कोय।।

और आचार्य जयसेन ने इसी बात का समर्थन करते हुए कहा है कि – **निर्विकल्पसमाधिरतानां व्यवहारविकल्पावलम्बनेन स्वरूपात्पतितं भवतीति द्वितीय कारण, इति निश्चयनयापेक्षया पापम्।**

अर्थात् शुभ भाव में परद्रव्य का अवलम्बन होने से वह पराधीन है और इसे स्वरूप की पतितावस्था होने से पाप ही कहा है – इसलिये मात्र वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग में उपादेय है।

पुण्य वकील– वकील साहब ने जो यह कहा है कि पुण्य में धर्म नहीं है; एकमात्र शुद्धोपयोगरूप वीतराग भाव में ही धर्म है तो जज साहब ! मेरे काबिल दोस्त ये भी जानते होंगे कि शुद्धोपयोग से पुण्य का बंध होता है, क्योंकि करणानुयोग में साफ लिखा है कि सातवें गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक शुद्धोपयोग होता है, जिसके कारण उत्कृष्ट पुण्य का बंध होता है। इसलिये जज साहब ! पुण्य ही मोक्षमार्ग है और मोक्ष का कारण है।

धर्म वकील – वकील साहब ने आगम की गहराई से जो ये बातें कहीं हैं, ये उनके अधूरे अध्ययन की ही परिचायक है; क्योंकि आचार्य अमृतचन्द्र ने पुरुषार्थसिद्धुपाय में स्पष्ट लिखा है कि –

येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति ॥
येनांशेन तु ज्ञानं तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति ॥
येनांशेन चारित्रं तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति ॥

अर्थात् जितने अंशों में आत्मा का श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र रहता है; उतने अंशों में जीव बंधरहित होता है और जितने अंशों में राग विद्यमान है उतने अंशों में बंध होता है।

पुण्य वकील– योरऑनर ! क्या मेरे काबिल दोस्त यह कहना चाहते हैं कि शुभभाव और पुण्य का मोक्षमार्ग में अस्तित्व ही नहीं है ?

धर्म वकील – मैंने ऐसा कब कहा, मैं तो यह कह रहा था कि पुण्य मोक्षमार्ग में हेय है। जिनागम में ही उद्धृत इस बात को सत्पुरुष कानजीस्वामी ने अत्यन्त सरलतापूर्वक सामान्यजन के सामने रखा है। कुछ लोगों का यह भ्रम है कि कानजीस्वामी एकान्तवादी थे, उन्होंने जिनागम में से दया-दान-पूजा सबको उड़ा दिया है जबकि उन्होंने कुछ भी नहीं उड़ाया; अपितु जिनागम में जिसप्रकार निरूपण आया था, उसीप्रकार अनेकान्त का संतुलन रखते हुए समझाया है।

मैं इस बात की पुष्टि के लिए पं. ज्ञानचन्दजी शास्त्री को अदालत में बुलाने की इजाजत चाहता हूँ; जिन्होंने सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों के संग्रह "प्रवचन रत्नाकर" का बहुत गहराई से अध्ययन किया है और उनके अनेक टेप-प्रवचन भी सुने हैं।

जज – इजाजत है।

बाबू – (बाबू शपथ दिलाता है और पण्डितजी दोहराते हैं।)

धर्म वकील – तो शास्त्रीजी ! स्वामीजी के अनुसार मोक्षमार्ग में पुण्य का क्या स्थान है ?

पण्डितजी – स्वामीजी का कहना तो यह है कि भाई ! जिनेन्द्र भगवान के दर्शन-पूजन भी न करे और तू अपने को जैन कहलावे ये तेरा जैनपना कैसा ? जिस घर में प्रतिदिन भक्तिपूर्वक देव-गुरु-शास्त्र के दर्शन-पूजन होते हैं, मुनिवरों आदि धर्मात्माओं को आदरपूर्वक दान दिया जाता है वह घर धन्य है; इसके बिना तो घर श्मशान तुल्य है। अरे अधिक क्या कहें ? ऐसे धर्मरहित गृहस्थाश्रम को तो हे भाई ! समुद्र के गहरे पानी में तिजाञ्जलि दे देना; नहीं तो यह तुझे डुबो देगा।

उनके इस कथन से सिद्ध है कि वे मोक्षमार्ग में पुण्य का स्थान तो मानते थे, परन्तु उस पुण्य में उपादेयबुद्धि – धर्मबुद्धि का निषेध करते थे; क्योंकि यदि यह जीव उसी में सन्तुष्ट हो जायेगा तो फिर कभी निर्विकल्प आत्मानुभूति शुद्धोपयोगरूप धर्म का अंगीकार नहीं कर सकेगा, इसलिये कभी-कभी तो वे मोक्षमार्ग में उस पुण्य को जहर तक भी कह देते थे।

धर्म वकील – प्वाइंट नोट किये जाएँ जज साहब ! क्या मेरे काबिल दोस्त भी कुछ पूछना चाहते हैं ?

पुण्य वकील– हाँ मैं भी कुछ सवालात करना चाहता हूँ। (पण्डितजी से) पण्डितजी साहब ! हमने तो सुना है कि स्वामीजी पुण्य को छुड़ाते थे तथा पुण्य-पाप दोनों को जड़ बताते थे – ऐसा सुनकर तो सभी शुभ भाव को छोड़ हीं देंगे।

पण्डितजी - कौन मूर्ख कहता है कि स्वामीजी शुभ भाव को छुड़ाते थे, उन्होंने स्वयं भारतवर्ष के अनेक तीर्थों की वन्दना की है; पंचकल्याणक कराये हैं; गुजरात में जहाँ दिगम्बर जैनधर्म का कोई अस्तित्व ही दिखाई नहीं देता था, कोई दिगम्बर जिनमन्दिर दिखाई ही नहीं देते थे; आज वहाँ उनके प्रभाव और सदुपदेश से अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ है और आज वहाँ भी दिगम्बर जैनधर्म का अस्तित्व दिखाई देने लगा है। अत: इससे सिद्ध होता है कि गुरुदेव

शुभ भाव नहीं छुड़ाते थे, अपितु वे तो अनादिकाल से चली आ रही शुभ भाव में हितबुद्धि को छुड़ाने का उपदेश देते थे; क्योंकि पूर्ण शुद्धोपयोग बिना शुभ भाव छूटता नहीं है, शुभ भाव होता है; किन्तु शुभ भावों में ज्ञानी को आत्मबुद्धि नही होती।

इसलिए वे शुभ भाव करते-करते आत्मकल्याण हो जाएगा – ऐसी मान्यता को छोड़ने का उपदेश देते हैं।

और जहाँ तक पुण्य-पाप को जड़ कहने का सवाल है तो पुण्य-पाप भावों में चेतनता नहीं है, इसलिए उसे जड़ कहते हैं। पुण्य-पाप स्पर्श-रस-गंध-वर्णवाला जड़ नहीं है, अपितु उसमें ज्ञान नही है; इसलिए समयसार के जीवाजीवाधिकार में उसे अजीव तथा कर्ताकर्म अधिकार में जड़ कहा है। अत: स्वामीजी भी पुण्य-पाप भाव में जानपना नहीं होने के कारण जड़ कहते थे।

पुण्य वकील– ठीक है; मैं इतना ही पूछना चाहता था।

धर्म वकील – ठीक है; पण्डितजी आप जा सकते हैं। देखा जज साहब, पुण्य प्रकाश द्वारा लगाया गया यह इल्जाम कि सत्पुरुष कानजीस्वामी दया-दान-पूजादि रूप शुभ भाव को मानते ही नहीं, सरासर गलत और बेबुनियाद है; क्योंकि स्वयं उन्होंने इस बात की पुष्टि की है कि मोक्षमार्ग में शुभ भाव भूमिकानुसार देखने में आते हैं, इसलिए उसे परम्परा से मोक्ष का कारण कह दिया जाता है; परन्तु वास्तव में वह मोक्षमार्ग में हेय है, मोक्ष का कारण नहीं है। यदि मेरे काबिल दोस्त अपनी सफाई में अब भी कुछ कहना चाहें तो कहें।

पुण्य वकील– (निराशा पूर्वक) नो सर, दैट्स ऑल।

जज – (कुछ लिखकर फैसला सुनाते हैं।) तमाम ठोस तथ्यों, अथाह आगम प्रमाणों और प्रमाणिक गवाहों के बयानों को मद्देनजर रखते हुए अदालत इस निर्णय पर पहुँची है कि पुण्यप्रकाश का

यह पक्ष कि **''मोक्षमार्ग में पुण्य और शुभ भाव उपादेय है और सत्पुरुष कानजीस्वामी ने इसके विपरीत प्रचार किया है''** यह सरासर झूठ और बेबुनियाद है।

तथा यह अदालत धर्मचन्द के पक्ष से सहमत है कि मोक्षमार्ग में शुभ भाव और पुण्यभाव होते हैं, पर उपादेय नहीं; आत्मानुभव रूप वीतराग धर्म ही उपादेय है। जिनागम में दया-दान-पूजा-व्रत के जितने भी उपदेश दिये जाते हैं यानि उन्हें मोक्षमार्ग कहा जाता है, वे सब कथन व्यवहार नय से हैं, वे भाव अशुभ में जाने की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं पर उनको ही मोक्षमार्ग मान लेने से सच्चे मोक्षमार्ग के लोप का प्रसंग आएगा। अत: शुभ भाव भूमिकानुसार होवें तो कोई हानि नहीं है, होने भी चाहिए, होते भी हैं; पर इनको ही मोक्ष का कारण मान लेना मिथ्यात्व है। तथा कुछ तथाकथित स्वार्थी लोगों ने सत्य को गहराई से समझे बिना मात्र विवाद का बिन्दु बनाकर समाज में उत्तेजना पैदा की है। यह अदालत उन तमाम लोगों को चेतावनी देती है कि वे इसप्रकार किसी ज्ञानी पुरुष के उपर झूठे आक्षेप न लगायें अन्यथा उन्हें चार गति चौरासी लाख योनियों रूपी जेल में अनन्तकाल के लिए जाना पड़ सकता है।

यह अदालत पुण्यप्रकाश को हिदायत देती है कि वे समयसार का पुण्य-पाप एकत्वाधिकार, नाटक समयसार का पुण्य-पाप एकत्वद्वार, योगसार, मोक्षमार्ग प्रकाशक का सातवाँ अधिकार, सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के प्रवचन रत्नाकर भाग-४, श्रावकधर्म प्रकाश, ज्ञानगोष्ठी; डॉ० हुकमचन्द भारिल्लकृत पुण्य-पाप एकत्व अधिकार का अनुशीलन और पण्डित रतनचन्द भारिल्ल के जिनपूजन रहस्य का स्वाध्याय कर अपनी भ्रमितबुद्धि को सुधारें अन्यथा अनन्तकाल के लिए संसार रूपी जेल में बंद रहना पड़ेगा।

जय जिनेन्द्र !

प्रस्तुति :- *सर्वश्री सौनू शास्त्री पोरसा, अभय शास्त्री खैरागढ़, अविरल शास्त्री विदिशा, सन्दीप शास्त्री गोहद, धर्मेन्द्र शास्त्री जयपुर, ललित शास्त्री बण्डा, मनीश शास्त्री रहली।*

ACHARYA SHRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR

हमारे प्रकाशन

१.	चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी)	५०/-
	[५२८ पृष्ठीय प्रथमानुयोग का अद्वितीय सचित्र ग्रंथ]	
२.	चौबीस तीर्थंकर महापुराण (गुजराती)	४०/-
	[४८३ पृष्ठीय प्रथमानुयोग का अद्वितीय सचित्र ग्रंथ]	
३.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १)	१०/-
४.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग २)	१०/-
५.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ३)	१०/-
	(उक्त तीनों भागों में छोटी-छोटी कहानियों का अनुपम संग्रह है।)	
६.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ४) **महासती अंजना**	१०/-
७.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ५) **हनुमान चरित्र**	१०/-
८.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ६) **(अकलंक-निकलंक चरित्र)**	१०/-
९.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ७) **(अनुबद्धकेवली श्री जम्बूस्वामी)**	१५/-
१०.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ८) **(श्रावक की धर्मसाधना)**	७/-
११.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ९) **(तीर्थंकर भगवान महावीर)**	१५/-
१२.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १०) **कहानी संग्रह**	७/-
१३.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ११) **कहानी संग्रह**	१०/-
१४.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १२) **कहानी संग्रह**	१०/-
१५.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १३) **कहानी संग्रह**	१०/-
१६.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १४) **कहानी संग्रह**	१०/-
१७.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १५) **कहानी संग्रह**	१०/-
१८.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १६) **नाटक संग्रह**	१०/-
१९.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १७) **नाटक संग्रह**	१०/-
२०.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १८) **कहानी संग्रह**	७/-
२१.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १९) **कहानी संग्रह**	१०/-
२२.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग २०) **कहानी संग्रह**	१०/-
२३.	अनुपम संकलन (लघु जिनवाणी संग्रह)६/-	
२४.	पाहुड़-दोहा, भव्यामृत-शतक व आत्मसाधना सूत्र	५/-
२५.	विराग सरिता **(श्रीमद्‌जी की सूक्तियों का संकलन)**	५/-
२६.	लघुतत्त्वस्फोट (गुजराती)	
२७.	भक्तामर प्रवचन (गुजराती)	
२८.	अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स)	१०/-

हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

जन्म
वीर संवत् 2451
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

देहविलय
8 दिसम्बर, 1987
पौष वदी 3, सोनगढ़

सत्समागम
वीर संवत् 2471
(पूज्य गुरुदेव श्री से)
राजकोट

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा
वीर संवत् 2473
फागण सुदी 1
(उम्र 23 वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे-

''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखने वाला नहीं मिलेगा...।''

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण**– इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान छहढ़ाला प्रवचन,(भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), जैनधर्म की कहानियाँ (भाग 1 से 6) अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, मूल में भूल, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनके बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक **''मैं ज्ञायक हूँ...मैं ज्ञायक हूँ''** की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ-यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।